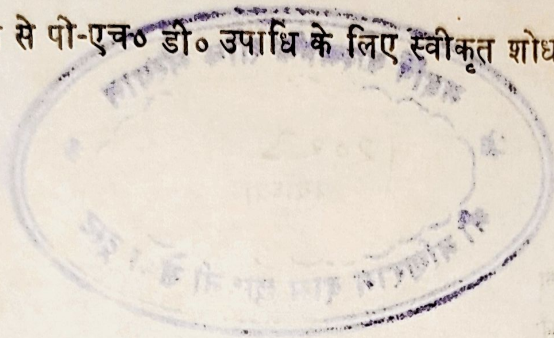
रामचरितमानस में भक्ति



डा॰ सत्यनारायण शर्मा

रामचरित मानस में भक्ति

[बिहार विश्व विद्यालय से पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध]



लेखक

डॉ० सत्यनारायण शर्मा

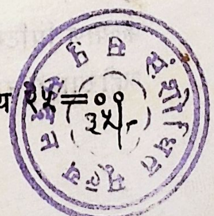
एम० ए० (हिन्दी एवं संस्कृत) पी-एच० डी०,

साहित्याचार्य, सा० रत्न०

प्रकाशक

सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा-३

मूल्य २५-००



छठा अध्याय

हिन्दी राम-भक्ति काव्य एवं भारतीय जीवन पर 'मानस' की भक्ति का प्रभाव

(क) हिन्दी राम-भक्ति काव्य पर "मानस" की भक्ति का प्रभाव

यों तो रामचरितमानस की भक्ति का प्रभाव प्रायः परवर्ती समग्र भक्ति-काव्यों पर पर पड़ा है, पर प्रस्तुत परिच्छेद की सीमित परिधि में तुलसी परवर्ती सभी रामभक्ति-काव्यों पर भी विचार करना संभव नहीं है। यथार्थतः अपने आप में यह अनुसंधान का एक स्वतंत्र विषय होने की क्षमता रखता है। अतः यहाँ पर कुछ प्रतिनिधि राम-भक्ति-काव्यों पर ही मानस को भक्ति के प्रभाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया जायगा। हाँ, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि तुलसी के पीछे उनका अनुकरण करने वाले तो बहुत से कवि हुए पर उनसे बढ़कर होना तो दूर की बात है, कोई उनकी समकक्षता भी नहीं प्राप्त कर सका। हिन्दी-रामभक्ति-काव्य के नन्दन-वन में तुलसी ही कल्पवृक्ष हुए और उनका स्थान निर्विवाद रूप से सर्वोपरि है। उनके रामचरितमानस में भक्ति की परम्परा और उसका उत्कर्ष पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। उनके परवर्ती काव्यों में भक्ति-विशेषतः रामभक्ति की धारा उतनी प्रशस्त नहीं रह गयी, पर क्षीण रूप में ही सही, वह सतत् प्रवाहित होती रही। यहाँ क्रमानुसार तुलसी परवर्ती प्रतिनिधि राम-भक्ति-काव्य, उनके रचयिता उनका काल एवं उन काव्यों पर पड़े मानस की भक्ति के प्रभाव का उल्लेख किया जा रहा है।

१ ध्यान मंजरी

ध्यान मंजरी एक सौ सा5 पंक्तियों की एक छोटी-सी सुन्दर पुस्तिका है जिसकी रचना केवल रोला छंद में हुई है। इसमें भगवान् राम का महारानी सीता के साथ प्रस्फुटित होने वाले सौन्दर्य का वर्णन है। इसके प्रणेता स्वामी अग्रदास जी हैं। ये तुलसी के समसामयिक थे। इनका जन्म १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था।[1] ये कृष्णदास पथहारी के शिष्य थे।[2] आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में इनकी बनाई चार पुस्तकों का पता है-

१. हितोपदेश उपखाणाँ बावनी।

२. ध्यान मंजरी।

३. राम ध्यान-मंजरी।

---

१ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—डा० भगवती प्रसाद सिंह, पृ० ३७९

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल—पृ० १४६

४. कुंडलिया ।[1]

पर डा० भगवतीप्रसाद सिंह के विचार में "अग्रदास जी की हिन्दी में दो रचनायें मिलती हैं—"ध्यान-मंजरी" और "कुंडलिया"। इनमें प्रथम की "राम ध्यान मंजरी" और द्वितीय की "हितोपदेश उपखाणा बावनी" नाम से भी कतिपय पाँडुलिपियाँ खोज में प्राप्त हुई हैं।"[2]

संवत् १६३१ में तुलसी ने रामचरितमानस का प्रणयन प्रारम्भ किया था।[3] अतः १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आविर्भूत रामभक्ति के महान् साधक के नाते स्वामी अग्रदास जी की साधना पर 'मानस' की भक्ति का प्रभाव पड़ना सर्वथा संभव है। स्वामी अग्रदास जी मानस पूजा करने वाले सिद्ध भक्त थे और इनकी 'ध्यान मंजरी' से राम भक्ति को पर्याप्त बल मिला है। उन्हें अपने 'ध्यान मंजरी' में सीता-राम के युगल स्वरूप के सौन्दर्य-वर्णन के लिए कोई उपमा ही नहीं मिलती। वस्तुतः सारी उपमाएं सीमित सौन्दर्य वाली हैं और सीता-राम के सौन्दर्य में वे अपने अनन्त रूप में प्रकट हो गयीं हैं।[4] सीताराम के इस अनुपम सौन्दर्य के ध्यान से ब्रह्मा और शिव भी अपने को पवित्र करते हैं। इस ध्यान से साधक का जन्म सफल एवं कृतकृत्य हो जाता है।[5] अपने आराध्य एवं आराध्या के सौंदर्य-वर्णन में मानसकार की जैसी तन्मयता एवं निर्विकार सौन्दर्य-भावना दृष्टिगोचर होती है वैसी ही स्वामी अग्रदास की भी।[6] इतना ही नहीं अग्रदास जी ने 'मानस' की शब्दावली भी अपने ग्रंथ में यत्र-तत्र ग्रहण की है।[7] अग्रदास जी ने सीता के सौदर्न्य में जो कुछ लिखा

---

१ वहीं

२ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ० ३८१

३ मा० १.३४.४

४ ध्यान मंजरी, प० सं० ६५—अतुलित युगल स्वरूप कवन अस उपमा जिनकी ।
जेतिक उपमा दीप्त शक्ति करि भासित तिनकी ।।

५ ध्यान मंजरी, पं० सं० ७१

६ (क) मा० १.२४२.१ (पू०)—विदुषन्ह प्रभु विराटमय दीसा ।
(ख) जोगिन्ह परम तत्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ।।—मा० १. २४२.४
(ग) ध्यान मंजरी, पं० सं० ४८—अस राजत रघुबीर धीर आसन सुखकारी ।
रूप सच्चिदानन्द बाम दिशि जनक कुमारी ।।

७ (क) मा० १.२१३.६—पुर नरनारि सुभग सुचि संता । धरम शील ग्यानी गुनवंता ।।
ध्या० मं०, पं० सं० ६ (उ)—धर्मशील नरनारि सबैं प्रभु सुयश परायन ।।
(ख) मा० १.२१६.८ (पू०) १.२४३.३ (पू०) – चितवनि चारु भृकुटि बरबाँकी ।
ध्यान मंजरी, प० सं० ३६ (पू)—चितवनि चारु कृपाल रसिक जन मन आकर्षंत ।
(ग) मा० १.१४७,६—उर श्री बत्स रुचिर बन माला । पदिक हार भूषन मनि जाला ।।
ध्या० मं०, प० सं० ३८ (उ०) उरश्रीबत्स सुचिन्ह कण्ठ कोस्तुभ मणि भ्राजे ।।
(घ) मा० १.२४८.३ (पू०)—भूषन सकल सुदेस सुहाए ।
ध्या० मँ०, प० सं० ४१ (पू०)—भूषण विविध सुदेश पीतपट शोभित भारी ।
(ङ) मा० ७.७६.७ (पू०)—ललित अंक कुलिसादिक चारी ।
ध्या० मं०, प० सं० ४५ (पू०)—युगल अरुण पद पद्म चिन्ह कुलिशादिक मंडित ।

है वह तुलसी की इस उक्ति 'भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए॥'[१] की व्याख्या सी प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ—

> नगन जरे छवि भरे विविध भूषण अस सोहैं।
> सुन्दर अंग उदार बिदित चामीकर कोहैं॥
> अलक झलकता श्याम पीठ सोभित कल वेणी।
> सुन्दरता की सींव किधौं राजति अलिश्रेणी॥
> हरित नगन कर जरित युगल जे हरि अस राजैं।
> तिन पर घुंघुरु और अग्र बिछिया जु बिराजैं॥
> तिन पर नग जु अमोल ललित चूनी गण लाये।
> चरण चारु तल अरुण सहज ही लगत सुहाये॥[२]

ध्यान मंजरी में अयोध्या का ध्यान,[३] वहाँ के धर्मशील नरनारी[४] एवं सरयू[५] के वर्णन भी रामचरितमानस से सर्वथा प्रभावित हैं। जिस प्रकार तुलसी ने रामचरितमानस नाम की महिमा घोषित करते हुए उसे कानों से सुनते ही विश्राम देनेवाला बतलाया है[६] उसी प्रकार अग्रदास जी ने ध्यान मंजरी नाम श्रवण करने से मन में मोद की अभिवृद्धि के अनुभव का उल्लेख किया है।[७] अपने-अपने ग्रंथ के अध्ययन के अधिकारियों के दोनों कवियों ने जो लक्षण दिये हैं उनमें भी बहुत कुछ साम्य है।[८] भगवान् के चरित श्रवण से होने वाले फल भी दोनों ने एक समान ही बतलाये हैं।[९] श्री सीताराम के ध्यान को दोनों ने परम कल्याणकारी कहा है।[१०] जिस तरह तुलसी ने राम को अजादि देवताओं से सेव्य एवं बन्दनीय कहा है[११] उसी तरह ध्यान मंजरीकार ने भी 'भव चतुरानन आदि' देवताओं के लिये बन्ध्य माना है।[१२] जिस प्रकार सुतीक्ष्ण-राम मिलन-प्रसंग में तुलसी ने सुतीक्ष्ण की भगवान् के ध्यान में

---

१ मा० १.२४८.३
२ ध्यानमंजरी, प० सं० ४९-६४
३ ,, ,, (उ०) १२.१३
४ वहीं, प० सं० ६ (उ०)
५ वहीं, प० सं० १८
६ मा० १.३५.७
७ ध्या० मं०, प० सं० ८० (पू०)
८ मा० ७.१२८.३-५—"यह न कहिअ हठ सीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि॥
द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ"॥
ध्या० मं०, प० सं० ७५—"तिन्हैं भूलि जनि कहौ कुटिलता पंक मलिन मन।
यह उज्वल मणिमाल पहिरिहैं परम रसिक जन॥"
९ मा० ७ १२६.१ (उ०): ५.६०—"सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा।"
ध्या० मं०, प० सं०, ७४ (पू०)—"परम सार यह चरित सुनत श्रवणन अघहारी।"
१० दोहावली, दो० १
ध्या० मं०, प० सं० ७४ (उ०)
११ मा० ३.४.९ (उ); १.१४६.१ (उ)
१२ ध्या० मं०, प० सं० ७१ (उ)

अतुलनीय रसिकता का वर्णन किया है,[१] उसी प्रकार अग्रदास ने भी सीताराम के ध्यान का हृदयंगम करना रसिकता से ही संभव माना है ।[२] जिस प्रकार तुलसी ने ज्ञान, तप एवं योग से भक्ति को अधिक महत्व प्रदान किया है[३] उसी प्रकार ध्यान मंजरीकार ने भी ।[४] उपयुक्त बातों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अग्रदास जो इस ग्रंथ की रचना में तुलसी के मानस से बहुत कुछ प्रभावित थे । आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के द्वारा उद्धृत अग्रदास के एक पद से भी यह स्पष्ट है कि उनका भक्त हृदय तुलसी के समान ही निश्छल होकर नम्रता प्रदर्शित करते हुए एकमात्र भगवान् राम के आधार का ही अनन्य आकांक्षी था ।[५]

२. रामाष्टयाम

"रामाष्टयाम" के रचयिता परम राम भक्त नाभादास जी हैं । ये उपर्युक्त महात्मा स्वामी अग्रदास जी के शिष्य एवं सहचर थे तथा इनका स्थूल देह संबंधी नाभ नारायण दास था ।[६] 'ये संवत् १६५७ के लगभग वर्त्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे ।"[७] इनके रामाष्टयाम में रामभक्ति संबंधिनी कविता है । वह रामचरितमानस की शैली[८] पर दोहा चौपाइयों में ब्रजभाषा पद्य में रचित है । इनमें राम एवं सीता के दिवारात्र की दिवसचर्या तथा उनकी मानसिक पूजा एवं सेवा का वर्णन है । रामचरितमानस का क्षेत्र विस्तृत है किन्तु रामाष्टयाम का अत्यंत संकुचित । पर फिर भी मानस में भगवान् राम के सौन्दर्य वर्णन की जो शब्दावली है, वह इस ग्रंथ में भी प्रायः उसी रूप में या थोड़ा हेर-फेर करके ले ली गयी है । उदाहरणार्थ नीचे कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

(क) **कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा ।**

—मा० १.१९९.४ (पू०)

---

१ मा० ३.१०.१०-१३
२ ध्या० मं, प० सं० ७२, ७३ (पू०)
३ मा० २.२९१.१-२
४ ध्या० म० प० सं० ७३ (उ)
५ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४६—औरनि के बल अनत पुकार ।
अगरदास के राम अधार ।।
६ "सहचर श्री गुरुदेव के, नाम नारायण दास ।"
—रामाष्टायाम, दो० ४ (पू०)
७ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, पृ० १४७
८ (क) मा० १.१८.७—जनक सुता जग जननि **जानकी** ।
अतिसय प्रिय करुना **निधान** की ।।
रामाष्टयाय, चौ० १९४—नील कमल कर धरे **जानकी** ।
सखिन सहित ढिग सुख **निधान की** ।।
(ख) मा० १.२२८.४—सरि समीप गिरिजा गृह सोहा ।
बरनि न जाइ देखि मनु मोहा ।।
रामाष्टयाम, चौ० २७९—सो आराम भवन सुठ **सोहा** ।
जो विलोक ऋतुपति **मन मोहा** ।।

कोउ कटि किंकिनि ललित निहारें।
उदररेख कोउ द्रष्टि न टारें॥ —रामाष्टयाम, चौ० १३४

(ख) उर मनिहार पदिक की शोभा। बिप्र चरण देखत मन लोभा॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। —मा० १.१९९. ६–७ (पू०)
उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनि जाला॥
—मा० १.१४७.६

कोउ भ्रगुपद कोउ माल सुहाये।
कोउ श्रीवत्स चिन्ह मन लाये॥
कोउक पदिक की रचना चितवें।
कम्बुकंठ रेखा अति हितवें॥

—रामाष्टयाम, चौ० १३५-१३६

(ग) उर मनि माल कम्बु कल गीवा। काल कलभ कर भुज बल सींवा॥
—मा० १.२३३.७

कोउ भुज युगल देखि अति मोहैं।
काल कलभ करमा लघु सोहैं॥
—रामाष्टयाम, चौ० १३७

(घ) पीत जनेउ महाछवि देइ।
—मा० १,३२७.५ (पू०)

यज्ञोपवीत चारु सुठि सोहा।
—रामाष्टयाम, चौ० १७५ (पू०)

(ङ) पिअर उपरना काखासोती।
—मा० १.३२७.७ (पू०)

श्वेत उपरना काखासोती।
—रामाष्टयाम, चौ० १७८ (पू०)

भगवान के दर्शन के लिए लोगों की विह्वलता एवं आतुरता का वर्णन रामाष्टयाम-कार ने ठीक मानसकार की तरह ही किया है।[1] तुलसी की तरह ही नाभादास ने भी

---

१ (क) धाए धाम काम सब त्यागी।
—मा० १.२२०.२ (पू०)

बाल वृद्ध सब देखन धावैं॥
—रामाष्टयाम, चौ० ३९४ (उ०)

निज निज टहल काज बिसरावें।
—वही, चौ० ३९५ (पू०)

(ख) जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धार्वाहं।
—मा० ७.३.७ (पू०)

लेखि विह्वल तनु सुधि कछु नाहीं।
—रामाष्टयाम, चौ० ३३३ (उ०)

(ग) जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥
—मा० १.२२०.४

ते बहु लखत अटारिन खरीं।
लगीं झरोखा आनन्द भरीं॥
—रामाष्टयाम, चौ० ९७, द्रष्टव्य, चौ० ३३५ (पू०); ३९८

भगवान राम के "शील" की चर्चा की है।[1] जिस तरह मानस में महारानी कैकयी[2] एवं अयोध्या के नागरिक[3] राम की अत्यधिक निकटता के प्रार्थी हैं। कुछ उसी तरह की प्रार्थना रामाष्टयाम में सखियाँ भी करती हैं।[4] राजा जनक के सम्बन्ध में भी तुलसी की मान्यता से नाभादास की मान्यता मिलती-जुलती है। जहाँ तुलसी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है— "जोग भोग महँ राखेउ गोई।[5] वहाँ नाभादास भी लिखते हैं—'जोग भोग करि आतम चीन्हा।"[6] तुलसी की नांई नाभादास ने भी अपनी दीनता की चर्चा कर सबों की वन्दना करते हुए उनसे अपने निर्वाह की प्रार्थना की है।[7] अपनी रचना के सम्बन्ध में तुलसी कहते हैं—

छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बाल बचन मन लाई।।[8]

नाभादास भी कहते हैं—

चूक क्षमा कीजो सुजन, सुनियो प्रीति लगाय।[9]

अयोध्या[10] एवं गुरु[11] के सम्बन्ध में भी मानसकार के कथन के रामाष्टयामकार के कथन साम्य रखते हैं। इतना ही नहीं इस तरह की और भी बहुत सी "रामाष्टयाम" की पंक्तियों, शब्दावलियों एवं भावों का "मानस" की पंक्तियों, शब्दावलियों एवं भावों से साम्य है। उदाहरणार्थ कुछ समानान्तर पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं—

---

१ को रघुवीर सरिस संसारा। सील सनेहु निबाहनिहारा।।
—मा० २.२४.४

लखि प्रभु शील बलैया लेहीं।
—रामाष्टयाम, चौ० ४०१ (उ०)

२ जों विधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू।।
—मा० २.१५.७

३ जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं।
सेवक हम स्वामी सिय नाहू। होउ नात यह ओर निबाहू।।
—मा० २.२४.५-६

४ कहैं कि जन्म जहाँ प्रभु देहू।
यह सुख हमहिं देहु करि नेहू।।
हम परिजन तुम नृपसुत होहू।
यहि विधि अचल करब प्रभु छोहू।। —रामाष्टयाम, चौ० ४०२, ४०३

५ मा० १ १७.२ (पू०)

६ रामाष्टयाम, चौ० ४३७ (उ०)

७ मा० १.१४ (छ)
रामाष्टयाम, चौ० ६

८ मा० १.८.८

९ रामाष्टयाम, दो ५१८ (उ०)

१० रामाष्टयाम, चौ० ७

११ बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।
—मा० १. सो० ५ (पू०)

राम कृपा को रूप, बन्दौ श्री गुरु हरि स्वयम्।
—रामाष्टयाम, सो० १ (पू०)

(क) जनक भवन के सोभा जैसी । गृहगृह प्रतिपुर देखिअ तैसी ।।

—मा० १.२८६.६

अवधपुरी की सोभा जैसी । कहि नहिं सकहिं शेष श्रुति तैसी ।।

—रामाष्टयाम, चौ० ७

(ख) कहहु बिदेह कवन विधि जाने ।

—मा० १.२६१.८ (पू०)

नृप बिदेह किम जानों तुमहीं ।

—रामाष्टयाम, चौ० ३४१ (उ०)

(ग) भरि भरि हेम थार भामिनि ।

—मा० ७.३.६ (पू०)

हेम थार भरि मधुर मिठाई ।

रामाष्टयाम, चौ० ३४४ (पू०)

(घ) तुम्ह गुर विप्र धेनु सुर सेबी । तसि पुनीत कौसल्या देबी ।।

—मा० १.२६४४

कोउ कह धन्य कौसल्या देबी ।
कोउ कह नृप दशरथ गुरु सेबी ।।

—रामाष्टयाम, चौ० ३४७

(ङ) बार बार मुख चुम्बति माता ।

—मा० २.५२.३ (पू०)

पावहु कहि मुख चुम्बति माता ।
बार बार कहि पावहु ताता ।।

—रामाष्टयाम, चौ० ४१७

(च) हम सब सकल सुकृत के रासी ।

—मा० १.३१००४ (पू०)

हमहूँ भई सुकृति के राशी ।

—रामाष्टयाम, चौ० ४४१ (उ०)

(छ) माता भरत गोद बैठारे ।

—मा० २.१६५.४ (पू०)

माता सियहि गोद बैठरत ।

—रामाष्टयाम, चौ० ४५६ (पू०)

अधिक क्या कहा जाय, एक स्थल पर तो नाभादास ने इस ग्रन्थ में मानस की पूरी अर्द्धाली ही ग्रहण कर ली है ।[1] इस तरह मानसकार का रामाष्टयामकार पर स्पष्ट प्रभाव है ।

नाभादास ने ब्रजभाषा गद्य में भी रामाष्टयाम की रचना की है । शुक्ल जी के अनुसार रामचरित सम्वन्धी इनके पदों का एक छोटा-सा संग्रह भी प्राप्त हुआ है ।[2] "किन्तु परीक्षा करने पर वह ब्रजभाषा पद्य में रचित अष्टयाम के कतिपय छन्दों का एक

---

१ मा० १.२४८.३ (उ०)
रामाष्टयाम, चौ० २१४ (उ०)

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० १४८

संकलन मात्र ठहरता है।"[1] नाभादास की कृतियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान "भक्तमाल" का है जिसका प्रणयन उन्होंने अपने गुरु स्वामी अग्रदास जी की आज्ञा से अनुप्राणित होकर किया था।[2] इसमें दो सौ भक्तों की भक्ति की महिमा सूचक बातें, तीन सौ सोलह छप्पयों में लिखी गयी हैं। भगवान राम के चरणों के महान भक्त होने के नाते नाभादास को उक्त भक्तों के अन्तःकरण में प्रवाहित होने वाली भक्ति की धारा को मूल्यांकन करने की अपूर्व क्षमता विद्यमान थी। इनके भक्तमाल की कथाओं के सम्यक् प्रचार-प्रसार के कारण ही आज भी भारतीय जनता में उद्भट विद्वानों एवं प्रकांड पण्डितों की अपेक्षा साधु वेशधारी भक्तों के प्रति ही कहीं अधिक श्रद्धा एवं पूज्य बुद्धि बनी हुई है। तुलसी के बाद नाभादास की कृतियों के द्वारा निश्चय ही राम-भक्ति-धारा को एक तीव्र गति मिली है। उन्होंने तुलसी की प्रशस्ति में अपने भक्त माल में निम्नांकित छप्पय लिखा है—

"कलि कुटिल जीव निस्तारहित, बाल्मीक तुलसी भयौ ।।
त्रेता काव्य निबन्ध करिव सत कोटि रमायन ।
इक अक्षर उद्धरें-ब्रह्म हत्यादि परायन ।।
अब भक्तनि सुखदेन बहुरि लीला बिसतारी ।
राम चरन रसमत्त रटत अह निसि ब्रतधारी ।।
संसार अपार के पार को, सुगम रूप नवका लयौ ।
कलि कुटिल जीव निस्तारहित, बाल्मीक "तुलसी" भयौ ।।"[3]

यथार्थतः तुलसी का राम के चरणों के रस में मतवाला बना रहने का दिवारात्र का व्रत देखकर उन्होंने भी प्रकारान्तर से अपने भीतर उसी व्रत की स्थिति की सूचना दी है। ऐसी स्थिति में उनकी साधना एवं रचना तुलसी की अद्वितीय एवं अमर कृति "मानस" की भक्ति के प्रभाव से भला कैसे अछूती रह सकती थी ?

३. रामचन्द्रिका

रामचन्द्रिका के रचयिता महाकवि केशवदास जी हैं। आचार्य शुक्ल ने इनका जन्म सम्वत् १६१२ और मृत्यु सम्वत् १६७४ के आसपास माना है।[4] रामचन्द्रिका की रचना केशव ने सम्वत् १६५८ में की थी।[5] इधर सम्वत् १६३३-३४ तक मानस की रचना भी सम्पन्न हो चुकी थी। बाद में मानस की काफी प्रसिद्धि भी बढ़ी। अतः रामचन्द्रिका पर मानस की भक्ति का प्रभाव नितान्त अपेक्षित है।

केशव के अनुसार उनकी यह 'रामचन्द्रिका' उनकी अन्तरात्मा से प्रकाशित एक असाधारण ग्रन्थ है। इसकी रचना के कारणों पर प्रकाश डालते हुए सर्वप्रथम वे अपनी

---

१ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—डा० भगवतीप्रसाद सिंह, पृ० ३८४
२ अग्रदेव आज्ञा दई. भक्तन को यश गाउ ।
भवसागर के तरन को, नाहिन और उपाउ ।।
भक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० ४४
३ नाभादास कृत भक्तमाल, पृ० ७५६
४ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २०७
५ रामचन्द्रिका, प्रकाश १, दो० ६

आन्तरिक अशान्ति का वर्णन करते हैं। इन्हें स्वप्न में आदिकवि वाल्मीकि का दर्शन होता है और ये उनसे सार सुख की प्राप्ति के मार्ग की जिज्ञासा प्रकट करते हैं।[१] वाल्मीकि, केशव से यही कहते हैं कि जबतक तू रामदेव की चर्चा नहीं करेगा तबतक तू देवलोक को प्राप्त नहीं कर सकता।[२] राम के शील का सविस्तार उल्लेख करते हुए वे उन्हें ही अवतारों में सर्वश्रेष्ठ परब्रह्म घोषित करते हैं[३] तथा कविवर केशव को उनके चरित्र का वर्णों में वर्णन करने का आदेश देते हैं। और

"मुनि पति यह उपदेश दे जबहीं भये अदृष्ट।
केशवदास तही करयो रामचन्द्र जू इष्ट॥"[४]

वस्तुतः केशव भी तुलसी की तरह निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों को स्वीकार करते हैं।[५] तुलसी की तरह उनके राम भी अन्तर्यामी, निर्गुण, सगुण, अनिर्वचनीय, असीम, अनादि, अनन्त और अरूप है। एक होते हुए भी वे अनेक रूप धारण कर सकते हैं। रजोगुण, सतोगुण एवं तमोगुण सब उन्हीं के रूप हैं जिनसे ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव क्रमशः संसार का सृजन, संरक्षण एवं संहार किया करते हैं। जब वे संसार को मर्यादाविहीन देखते हैं तब सगुण रूप में अवतीर्ण होकर उसे मर्यादित कर जाते हैं। कच्छप, मीन, बाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि सब उन्हीं के रूप हैं।[६] केशव के राम भी आदिदेव एवं सर्वज्ञाता हैं। ब्रह्मा. विष्णु, शिव, सूर्य और चन्द्र आदि सब उन्हीं के अंशावतार हैं। ब्रह्म से लेकर परमाणु तक अज, अनन्त राम को ही वे व्याप्त देखते हैं।[७] ब्रह्मा राम के गुणों को ही देखते रहते हैं, सरस्वती उन्हीं के गुणों की गिनती करती रहती हैं, शेष अपने सहस्र मुखों से उन्हीं के गुणों का वर्णन करते हैं पर अंत नहीं पाते।[८] तुलसी के परशुराम की तरह केशव के परशुराम पर भी राम के शील का ऐसा अमोघ प्रभाव पड़ता है कि वे भी उन्हें 'शील समुद्र' के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।[९] तुलसी की तरह केशव के अनुसार भी एकमात्र राम ही काम के लायक हैं और शेष सब व्यर्थ हैं।[१०] जिनका मन राम के चरणों में लीन रहता है उनके शरीर का मृत्यु नाश नहीं कर सकती। प्रतिक्षण उनके दुःख नाश होते जाते हैं।

---

१ रामचन्द्रिका, प्रकाश १, छन्द ७
२ वहीं, छंद १६
३ वहीं, छंद १७
४ रामचन्द्रिका, प्रकाश १, दो॰ १८
५ मा॰ १.१९८—व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति वस कौशल्या के गोद॥
रा॰ च॰, प्र॰ २९, छंद—४५—जाके रूप न रेख गुण जानत वेद न गाथ।
रंगमहल रघुनाथ गे, राजश्री के साथ॥
६ रामचन्द्रिका, प्रकाश प्रकाश २०, छंद १५, २४
द्रष्टव्य, मा॰ ७.६.५;१.७३. ३-४; १.१२१.६-८; ६.११०.७-८
७ रामचन्द्रिका, प्र॰ २०, छंद ५४-४४
८ वही, प्रकाश १, छंद १५
९ वही, प्रकाश ७, छंद २७१
१० वही, प्रकाश, १६, छंद २६ विनपत्रिका १९८

और उनके हृदय में अनंत आनंद का आविर्भाव होता जाता है। इस तरह अन्ततः वे भगवान् के आनंद-स्वरूप में निमग्न हो जाते हैं।[१]

मानसकार[२] की तरह ही रामचन्द्रिकाकार ने भी राम के नाम को सभी सद्गुणों का उद्गम स्थल माना है।[३] वस्तुतः राम के रूप से उनके नाम का ही अधिक महत्व है। तुलसी ने इस तथ्य को हृदयंगम कराने के लिए नाम को अनंत क्षेत्रों में उद्धार-कार्य करते हुए दिखाया है और यहाँ तक कह दिया है कि 'रामु न सकहिं नाम गुन गाई।'[४] केशव ने भी राम की वन्दना के क्रम में ''नाम देहि मुक्ति' कहकर इसी तथ्य की ओर इंगित किया है। नाम की अनंतता का ज्ञान प्राप्त कर लेने के उपरान्त जीव अपने क्षुद्र स्वार्थों की परिधि का अतिक्रमण कर मुक्त हो जाता है।[५]

तुलसी की तरह ही केशव ने भी राम और शिव का सुन्दर समन्वय किया है।[६] केशव के शिव राम के आदर्शों के अनन्य उपासक हैं और वे उस अनंत शील सम्पन्न भगवान् राम का सतत् ध्यान किया करते हैं।[७] उन्होंने राम को योगीश शिव के स्वामी की तरह ही नहीं देखा है[८] प्रत्युत सेतुबन्ध प्रकरण में उनकी शिव-भक्ति का भी बड़ा ही सुन्दर चित्रांकन किया है।[९]

गोस्वामी जी की तरह केशव ने भी इसी सिद्धान्त को स्वीकार किया है कि सर्वव्यापी अनन्त पूर्ण पुरुष परमात्मा की आदि शक्ति ही जगन्माता सीता के रूप में अवतरित

---

१ रामचन्द्रिका, प्रकाश २४ छंद २१

२ (क) चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥
मा० १. २२.८

(ख) नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
—मा० १.२७.७

(ग) कलिजुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥
—मा० ७.१०३.४-७

३ (क) लेई जो कहिये साधु तेहि, जो न लेइ सो बाम।
सब को साधन एक जग, राम तिहारो नाम॥
—रामचन्द्रिका, प्रकाश २५, छंद ४०

(ख) जब सब बेद पुराण नसैहैं। जप तप तीरथहू मिटि जैहैं।
द्विज सुरभी नहिं कोउ बिचारें। तब जग केवल नाम उधारे॥
—वही, प्रकाश २६, छंद ८

४ मा० १. २६.८

५ रामचन्द्रिका, प्रकाश १ छंद ३

६ वही, प्रकाश ३, छंद २

७ वही, प्रकाश १, छंद १४

८ वही, प्रकाश २०, छंद १३.४.... 'योगीश-ईश तुम हो........

९ वही, प्रकाश १५, छंद ३४,३५

होती है। उन्होंने सीता को योगमाया की तरह भी देखा है[1] और रावण के द्वारा छाया-सीता के अपहरण का ही उल्लेख किया है।[2] लक्ष्मण वे को भी शेषावतार मानते हैं[3] और बानरों को देवताओं की सगुण परिणति के रूप में स्वीकार करते हैं।[4]

तुलसी की तरह केशव को भी भगवान राम की जन्मभूमि अयोध्या एवं वहाँ के निवासियों की पवित्रता का पूरा-पूरा ध्यान है।[5] उनकी रामचन्द्रिका में भी अयोध्या के नर-नारी ही नहीं प्रत्युत पशु-पक्षी भी भगवान् राम के गुणगान करने में तत्पर हैं।[6] राम की सुन्दर जन्मभूमि अयोध्यापुरी के संबंध में ही नहीं प्रत्युत उत्तर दिशा में प्रवहमान पावन सरयू नदी के संबंध में भी तुलसी की मान्यता से केशव की मान्यता सर्वथा मिलती-जुलती है पर उनके युग की सहज प्रवृत्ति एवं उनकी व्यक्तिगत अभिरुचि के कारण उसके वर्णन में अलंकारप्रियता का दर्शन होना स्वाभाविक है।[8]

भक्ति की साधना के अन्तर्गत तुलसी की नांई केशव ने भी दैन्य को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। यही दैन्य निरभिमानता की पवित्रता से समस्त पापों को जलाकर, खाक कर देता है।[9] यथार्थतः अभिमान का परित्याग कर देने वाला साधक संसार के समस्त संतापों से मुक्त हो जाता है।[10] उनकी दृष्टि में वही जीवन्मुक्त होता है जिसका अन्तःकरण कर्म और हृदय की पवित्रता के अन्तर्गत स्वार्थों से अनासक्त हो जाता है। अहंभाव से मुक्ति को ही व सच्ची मुक्ति मानते हैं और विवेक के द्वारा गुण-दोषों से आसक्ति रहित हो

---

१ (क) वही, प्रकाश २०, छंद १३
(ख) मा० १.१५२.४
(ग) मा० २.१२६.६

२ (क) रामचन्द्रिका, प्रकाश १२, छंद २०
(ख) मा० ३.२४.४

३ (क) वही प्रकाश २०, छंद ५२.१
(ख) मा० २ १२६.११

४ (क) वही, प्रकाश १८, छंद ११.१
(ख) मा० १.१८७-१८८.१-२

५ (क) रामचन्द्रिका, प्रकाश १, छंद २३
(ख) वहीं, छंद ५०--नागर नगर अपार महा मोह तम मित्र से।
तृष्णा लता कुठार लोभ समुद्र अगस्त्य से॥

६ (क) वहीं, छंद ४४
(ख) मा० ७.३०.१-७.३०
(ग) मा० ७.२८.७

७ मा० ७.४.५-६

८ (क) रामचन्द्रिका, प्रकाश १, छंद ४८, ४६
(ख) वहीं, छंद २६, २७

९ रामचन्द्रिका, प्रकाश १५, छंद २४

१० वही, प्रकाश २५, छंद १८

जाने वाले व्यक्ति को ही वे जीवन्मुक्त कहते हैं।[१] सत्संग, समत्व, संतोष और विवेक की महिमा केशव भी स्वीकार करते हैं। यथार्थतः ये ही चारों मुक्ति-नगरी के द्वार के कुशल रक्षक हैं।[२] केशव की दृष्टि में भी जीव जब लोभ, मोह, मद और काम के वशीभूत हो जाता है तब वह अपने सहज स्वरूप को विस्मृत कर इन्हीं से शासित होता रहता है।[३] केशव ने भी मानव-जीवन में उत्पन्न होने वाले शैशवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक के सभी कष्टों का अपनी पैनी दृष्टि से भलीभाँति अवलोकन किया है और काम, क्रोध, मोह, लोभ एवं अभिमान में भस्म होते हुए मानव-मन का का प्रमुख कारण तृष्णा को ही माना है।[४] उन्होंने इस संसार को अज्ञानान्धकार से आच्छन्न चक्रव्यूह की तरह स्वीकार किया है। वस्तुतः इस संसार में आकर निष्कलंक बाहर निकल जाने वाले ही साधु हैं और विषयों के अन्तर्गत स्थित होकर भी उनसे अछूते रहने वाले ही वन्दनीय एवं अनुकरणयी हैं।[५] मानसकार की तरह केशव ने भी सत्य की उपासना पर काफी बल दिया है।[६] राजा हरिश्चन्द्र के जगद्-वन्द्य सत्य प्रेम को उन्होंने बड़े ही सम्मान एवं प्रतिष्ठा के साथ स्मरण किया है।[७] तुलसी की तरह वे भी वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा को स्वीकार करते हुए भी भक्ति के क्षेत्र में उसे बाधक नहीं मानते हैं।[८]

मानसकार की तरह रामचन्द्रिकाकार भी अपने ग्रन्थ के मंगलाचरण में विपत्तियों को दूर कर मंगल का विधान करने वाले गणेश की स्तुति करते हैं[९] और राम राज्याभिषेक के पश्चात् ब्रह्मा इत्यादि के द्वारा की गई राम की स्तुतियों में ठीक उसी तरह उसके परब्रह्मत्व पर भी प्रकाश डालते हैं।[१०]

---

१ (क) वही, प्रकाश २५, छंद १७ से १९ तक
(ख) मा० ७. ४१

२ रामचन्द्रिका, प्रकाश २५, छंद ९

३ वहीं, छंद ३ (पू०)

४ (क) वहीं, प्रकाश २४, छंद १ से २० तक
(ख) मा० ७.७०.८ (पू०)

५ वही, प्रकाश २५, छंद १०-१२

६ (क) वही, प्रकाश ६, छंद ५१ (पू०)
(ख) मा० २.२८.४-६
(ग) मा० २.३०.७
(घ) मा० २.२६४.६ (पू०)

७ वही, प्रकाश २, छंद २१

८ (क) वही, प्रकाश ३९, छंद ३८
(ख) मा० २.१९४
(ग) मा० ७-१३०.९-१२

९ (क) मानस, बालकाण्ड, श्लोक १
(ख) रामचन्द्रिका, प्रकाश १, छन्द १

१० रामचन्द्रिका, प्रकाश २७, छन्द १–२४

केशव ने अपने ग्रन्थ की रचना के प्रारम्भ[1] एवं अन्त[2] में जो विचार व्यक्त किए हैं वे भी मानस के प्रारम्भ एवं अन्त में व्यक्त विचार से सर्वथा मिलते-जुलते हैं। इस तरह केशव की रामचन्द्रिका पर तुलसी के मानस की भक्ति के पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। पर यथार्थतः केशव की इस कृति में तुलसी की सहृदयता, भावुकता एवं भक्ति की तन्मयता का नितान्त अभाव है। वे स्वभावतः भक्त नहीं हैं बल्कि काव्य में अलंकार का स्थान प्रधान समझने वाले चमत्कारवादी श्रृंगारी कवि एवं आचार्य हैं। सम्भवतः मानस का बढ़ता हुआ प्रचार एवं उसका अमोघ प्रभाव देखकर तथा अपनी श्रृंगारी साहित्य-साधना से ऊबकर ही वे रामचरित की रचना में प्रवृत्त हुए थे। परन्तु उनमें जन्मजात भक्तकवि की स्वाभाविक सरसता, तन्मयता एवं प्रेम-विह्वलता का सर्वथा अभाव था। यही कारण है कि केशव की रामचन्द्रिका का सामान्य हिन्दी-भाषा भाषी जनता के हृदय-मन्दिर में कोई स्थान नहीं है और न उसने चार सौ वर्षों के लोक-जीवन को ही किसी प्रकार प्रभावित किया है। सम्पूर्ण रामचन्द्रिका के सांगोपाँग अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम परब्रह्म को इस काव्य का नायक बनाकर भी उनके महत्त्चरित्र का गुण-गान करना केशव का उद्देश्य नहीं है। यथार्थतः उनका उद्देश्य छन्द,[3] अलंकार-विषयक अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं प्रकाण्ड पांडित्य का प्रदर्शन करना है। स्वभावतः भक्त नहीं होने के कारण तथा अपनी अनावश्यक अलंकारप्रियता के लोभ को संवरण नहीं कर सकने के कारण रामचन्द्रिका के स्थल-स्थल पर उनसे भयंकर भूलें हुई हैं। राम को परब्रह्म का अवतार मानकर भी उन्होंने उनका जो चित्रण किया है वह सर्वथा वैशिष्ट्यहीन एवं निष्प्राण प्रतीत होता है। केशव के राम में तुलसी के राम की तरह चरित्रगत

---

१ (क) जिनको यश हंसा, जगत प्रशंसा, मुनिजन मानस रन्ता।
....
....
तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागे॥
—रामचन्द्रिका, प्रकाश १, छन्द २०

(ख) स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।
—मा० १, श्लोक ७.३

(ग) निज सन्देह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥
—मा० १.३१.४

२ (क) लहै सुभुक्ति लोक लोक अन्त मुक्ति होहि ताहि।
कहै सुनै पढ़ै गुनै जु रामचन्द्र चन्द्रिकाहि॥
—रामचन्द्रिका, प्र० ३९, छन्द ३९ (उ०)

(ख) रघुवंश भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥
—मा० ७.१३०.१३–१४

(ग) मा० ७.१३० दो० के बाद के श्लोक २ की अन्तिम दो पंक्तियाँ।

(घ मा० १.१५. १०-११

३ रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णित हों बहुछन्द।
—रामचन्द्रिका, प्रकाश, १, छन्द २१ (उ०)

महानता एवं विराटता दृष्टिगोचर नहीं होती है। "रामचन्द्रिका" में वनगमन के समय राम अपनी माता कौशल्या को पातिव्रत धर्म का उपदेश देते हुए पाये जाते हैं।[१] वे भरत के ऊपर सन्देह प्रकट करते हुए लक्ष्मण से अयोध्या में रहकर उनके कार्यों को सूक्ष्म दृष्टि से देखने को कहते हैं।[२] राम आदि को वन को ओर जाते देख मार्ग में पड़ने वाले लोगों से केशव यही कहलाते हैं कि—

"किधौ मुनि साप हत किधौं ब्रह्म दोषरत।
....
किधौं कोउ ठग हौं .... ।"[३]

एक स्थल पर तो उन्होंने राम की उपमा उल्लू से दे डाली है।[४] ये सारी बातें असंगत हैं।

तुलसी के राम की तरह ही केशव की सीता भी तुलसी की सीता से कुछ भिन्न हैं। केशव के राम जहाँ वन-यात्रा में वल्कल वस्त्र के अंचल से सीता पर पंखा झल रहे हैं वहाँ वे उत्तर रूप में अपने "चंचल चारु दृगंचल" से केवल उनकी ओर निहार लेती हैं।[५] पर तुलसी की सीता वन यात्रा में पूर्ण स्त्रियोचित गुणों को प्रदर्शित कर पातव्रत धर्म की अमिट छाप छोड़ती हुई दृष्टिगोचर होती हैं।[६] वन मार्ग में चलती हुई भी तुलसी की सीता वहाँ-वहाँ पैर नहीं रखतीं, जहाँ-जहाँ राम पैर रखते हैं[७] क्योंकि उन्होंने अपनी भावभूमि में अपने प्रियतम के पद-चिन्हों को आदर्श रूप प्रदान कर रखा है। परन्तु आलंकारिक कवि केशव की सीता वनमार्ग में अपने प्रियतम के पैरों से दबी हुई भूमि पर सानन्द पैर रखती जाती हैं।[८] वस्तुतः केशव की आलंकारिक चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने उनकी रामचन्द्रिका को सर्वाधिक विकृत एवं उनकी भक्ति-भावना को अरुचिकर एवं कुण्ठित कर डाला है। अतः उसमें "रामचरितमानस" की सी जीवनीशक्ति एवं प्राणवत्ता नहीं आ सकी है और वह

---

१ रामचन्द्रिका प्रकाश ९ छन्द ११-१७
२ वहीं, छन्द २७.३—"आय भरत्थ कहाँ धौं कर जिय भाय गुनौ।"
३ वहीं, छन्द ३४.५–७
४ "बासर की सम्पत्ति उलूक ज्यों न चितवत"
—वही, प्रकाश १३, छन्द ८८, पंक्ति ३
५ रामचन्द्रिका, प्रकाश ९, छन्द ४४ (उ०)

मग को श्रम श्रीपति दूर करें सिय को शुभ बालक अंचल सो।
श्रम तेऊ हरें तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सौं॥

६ मा० २.६७. १–६
७ मा० २.१२३.५
८ रामचन्द्रिका, प्रकाश ९, छन्द ३८—

मारग की रज तपित है अति।
केशव सीतहिं सीतल लागति॥
प्यौ पद पंकज ऊपर पायनि।
देज्ञ चले तेहि ते सुख दायनि॥

लोक-हृदय में अपना स्थान बनाने में असफल रही है। पर फिर भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि तुलसी परिवर्ती रामभक्ति-काव्यों में "रामचन्द्रिका" का एक महत्वपूर्ण स्थान है और वह "मानस" की भक्ति से बहुत कुछ प्रभावित भी है।

४. "रहिमन विलास"

"रहिमन विलास" अब्दुर्रहीम खान-खानां के सभी ग्रन्थों का पूरा संग्रह है। इसमें उनकी रहीम दोहावली या सतसई, बरवै नायिका-भेद, श्रृंगार-सोरठ, मदनाष्टक, "रासपंचाध्यायी" नगर शोभा, फुटकल बरवै, फुटकर कवित्त सवैये सभी कृतियाँ संग्रहीत हैं।

रहीम का जन्म संवत् १६१०[1] और मृत्यु संवत् १६८३[2] माना जाता है। यों तो रहीम निर्विवाद रूप से कृष्ण-भक्त कवि हैं[3] पर स्थल-स्थल पर उन्होंने रामभक्ति सम्बन्धी दोहों की भी रचना कर अपने परम रामभक्ति होने का परिचय दिया है।[4] राम भक्ति-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी के साथ रहीम की प्रगाढ़ मैत्री भी उनके रामभक्त होने का एक प्रमुख कारण है। रहीम की रामभक्ति सम्बन्धी रचनाएँ रामचरितमानस में प्रतिपादित भक्ति से प्रभावित भी प्रतीत होती हैं।

तुलसी[5] की तरह रहीम की भक्ति-साधना भी जाति, कुल, धर्म और देश की परिधि का अतिक्रमण कर सार्वदेशिक एवं सार्वभौम बन गयी थी। यही कारण है कि उनके विशाल एवं उदार हृदय ने मुसलमान होते हुए भी उन्हें कृष्ण एवं राम को भक्ति की ओर उन्मुख कर दिया था। मानसकार की तरह रहीम भी अपनी रचनाओं में गणेश[6], कृष्ण[7], सूर्य[8], शिव[9], हनुमान[10] एवं गुरु के चरण कमलों[11] की वन्दना करते हैं। ब्राह्मण जाति के प्रति उनका भी पूज्य भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।[12] वे भी त्याग के आदर्श की अनुपम झांकी प्रस्तुत करने वाले भक्तशिरोमणि भरत को भगवान राम की अपेक्षा अत्यधिक महत्व देते हैं।[13]

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० शुक्ल, पृ० २१६
२ वही, पृ० २१८
३ (क) रहिमन विलास, दोहावली, दोहा १
(ख) वही, बरवै, दोहा ३३-३६
(ग) वही, पृष्ठ ६८ से ७२ तक
(घ) उनका रास पंचाध्यायी ग्रन्थ तो पूर्णतः कृष्णभक्ति से सम्बद्ध है।
४ रहिमन विलास, दोहावली, छन्द ५०, १५५, २०६, बरबै, दोहा ६१
५ मा० ३.३५.५–६; कवितावली पद १०६-१०७
६ से ११ तक के उदाहरण रहिमन विलास, बरवै छन्द १ से ६ तक
१२ (क) वही, दोहावली, नगर शोभा, दोहा ३—

उत्तम जाती है ब्राह्मनी, देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाय ॥

(ख) मा० १.२. ३—बन्दउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना ॥
१३ रहिमन विलास, दोहावली, दोहा—६

रहीम राम के ईश्वरत्व को पूर्णतः पहचान चुके थे। उनकी दृष्टि में सच्चा रामोपासक राम के जीवन के आदर्शों को अपने जीवन में उतार लेता है। अन्यथा राम के आदर्शों के समीप नहीं पहुँच सकने वाले साधक की रामोपासना निरर्थक ही है।[1] राम के आदर्शों से अनुप्राणित होकर रहीम ने अपने अन्तःकरण में समग्र शुभ गुणों को समाहित कर लिया था। महादानी राम के स्वभाव को तो पूर्णतः आत्मसात् करके वे महादानी ही बन गये थे। अपने व्यक्तिगत जीवन को राममय बनाकर तुलसी की तरह अपनी रचनाओं के माध्यम से जन-जन के जीवन को राममय बनाने का रहीम ने स्तुत्य एवं प्रशंसनीय प्रयास किया है।

रहीम के राम दीन-दुःखियों के सहायक हैं। उन्होंने अपने नारायण रूप में यहाँ आकर ग्राह से गजेन्द्र की रक्षा की है। अच्छे दिनों में तो बहुत से मित्र हो जाते हैं पर विपत्ति के दिनों में एकमात्र मित्र राम ही होते हैं।[2] साधारण मनुष्य तो दुःखी व्यक्ति के दुःख को सुनकर मखौल उड़ाता है पर भगवान् राम तो उसके दुःखों को दूर ही करके दम लेते हैं।[3] जहाँ और लोग याचना करने पर अस्वीकार कर देते हैं तथा विपत्ति की बेला में संबंध-विच्छेद कर लेते हैं, वहाँ भगवान् राम याचना करने के पूर्व ही याचक को मनोभिलषित वस्तु प्रदान कर देते हैं और एक बार ग्रहण कर लेने पर फिर उसे कभी भी नहीं छोड़ते।[4] वस्तुतः परम रामभक्त रहीम की ये सारी उक्तियाँ उनकी निजी अनुभूति पर ही आधारित हैं और इसीलिए वे अपने मन से बार-बार "दीनबन्धु दुःख टारन" भगवान् राम की भक्ति करने का आग्रह करते हैं।"[5]

तुलसी की तरह रहीम ने भी राम के नाम की अमोघ शक्ति को स्वीकार किया है। उनका कथन है कि कामादि से ओत-प्रोत व्यक्ति यदि धोखे से भी राम का नाम स्मरण कर ले तो उसे निश्चय ही परमगति की प्राप्ति हो जायेगी।[6] भक्त रहीम ने भी तुलसी की तरह ही अपनी दीनता प्रदर्शित करते हुए भगवान् राम से अपने उद्धार की आशा प्रकट की है।[7] उनका यह अखण्ड विश्वास है कि राम और संसार दोनों की समानान्तर ढंग से

---

१ रहिमन विलास, दोहावली, दोहा २४५

२ रहिमन विलास, दोहावली, छंद ७३ उत्तरार्द्ध
मा० ७.३४.८; ७.४७.४

३ वही, छंद १०२

४ वही, छंद १५०

५ रहिमन विलास, दोहावली, बरबै छंद ९१—भज मन राम सियापति, रघुकुल-ईस।
दीनबन्धु दुःखटारन, कौसलधीस॥

६ रहिमन विलास, दोहावली, छंद २०६—
"रहिमन धोखे भाव से, मुख से निक से राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम॥
मा० १.२८.१; वैराग्य-संदीपनी, दो० ३७ (सिद्धान्त-तिलक, पृ० ४१)

७ (क) रहिमन विलास, दोहावली, छंद १५५
"मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग॥"
(ख) मा० ७.१३० (क)

सिद्ध कर लेना महाकठिन कार्य है क्योंकि सदा सत्य के व्यवहार से ही राम की प्राप्ति होती है पर सदा सत्य के व्यवहार से संसार के कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते।[1] राम ने भी सत्य के व्यवहार से ही अपनी संसार सागर रूपी नौका को गन्तव्य स्थान तक पहुँचाया था और उनके शरणापन्न होने से प्रत्येक मनुष्य की संसार सागर रूपी नौका अपने लक्ष्य तक पहुँच जाती है। पर राम की शरणागति का वास्तविक स्वरूप या स्वार्थों से पूर्णतः अनासक्ति है। राम स्वयं स्वार्थों से अनासक्त हैं और रहीम की दृष्टि में ऐसे राम के शरणापन्न होकर मनुष्यों को स्वार्थों से अनासक्त हो जाना सर्वथा स्वाभाविक ही है। इसी अनासक्ति की नौका पर आरूढ़ होकर मनुष्य आसक्ति रूपी संसार-सागर का संतरण करता है, अन्यथा इस संसार-सागर को संतरण करने का अन्य कोई परिहार नहीं है।[2] गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसी तथ्य का रहीम से पूर्व ही निरूपण किया है।[3]

तुलसी की तरह रहीम जितने बड़े सहृदय भक्त थे उतने ही बड़े विलक्षण-दृष्टि-सम्पन्न कवि भी। उनकी रामभक्ति की तन्मयता एवं पैनी कवि-दृष्टि की विलक्षणता को प्रदर्शित करने के लिए उनके एक दोहे को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा—

धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जिमि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज।[4]

प्रथम चरण में रहीम प्रश्न करते हैं कि गजराज अपने मस्तक पर सूँड़ से पृथ्वी की धूल उठा उठा-कर क्यों डालता है? दूसरे चरण में वे इसी का उत्तर देते हुए कहते हैं कि इस प्रकार हाथी मानों भगवान् राम के चरणों की वह धूलि ढूँढता रहता है जिसके द्वारा गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या तर गई थी, ताकि वह भी उसी के समान तर जाय। तुलसी ने भी मानस में भगवान् राम के चरणों की पवित्र धूलि से मुनि पत्नी अहल्या के उद्धार का उल्लेख किया है।[5] इसी तरह सर्वत्र रहीम की रचनाओं में मानसकार की मार्मिकता एवं भावुकता टपकती है। रहीम के इस तरह के भक्तिपरक तथा अन्यान्य नीतिपरक दोहे आज भी शिक्षित अशिक्षित लोगों के मुख से बराबर निकलते रहते हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिन्दी-भाषी भूभाग में सर्वसाधारण के मुँह पर रहते हैं।"[6]

---

१ रहिमन विलास, दोहावली, छंद ७
तुलसी सतसई, प्रथम सर्ग, दो० ४४

२ रहिमन विलास, दोहावली, छंद ५०—
"गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव॥"

३ मा० ३.४.१३-१६—
त्वदंघ्रि मूल ये नराः। भजंति हीन मत्सराः॥
पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले॥
....
निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांति ते गतिं स्वकं॥

४ रहिमन विलास, दोहावली, छंद ११२

५ मा० १.२१०

६ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० २१७

५ ''कवित्त-रत्नाकर''

'कवित्त-रत्नाकर' के प्रणेता परम राम-भक्त कविवर सेनापति जी हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों से 'इनका जन्मकाल संवत् १६४६ के आस-पास माना जाता है।'[१] ये अपने समय के बड़े ही सहृदय, भावुक एवं भक्ति कवि थे। इन्होंने 'कवित्त रत्नाकर' की रचना संवत् १७०६ में की थी।[२] इसके अनेकानेक कवित्त भक्तिभाव से परिपूरित हैं। सेनापति के भक्तत्यात्मक उद्गार बड़े ही मर्मस्पर्शी एवं चमत्कारपूर्ण होते हैं। वस्तुतः रामभक्ति की मर्यादावादी परम्परा में सेनापति भी एक साँस्कृतिक कड़ी ही हैं।

सेनापति कृत 'कवित्त-रत्नाकर' के संपादक उमाशंकर शुक्ल जी हैं। इस ग्रंथ में 'श्लेष-वर्णन', शृंगार-वर्णन, ऋतु-वर्णन, रामायण-वर्णन और ''रामरसायन-वर्णन'' की क्रमशः पाँच तरंगे हैं। इनके अतिरिक्त एक परिशिष्ट भी है। पहली तरंग के करीब पन्द्रह सोलह कवित्तों में ही रामभक्ति की चर्चा हुई है। दूसरी और तीसरी तरंग का विषय-वस्तु मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम के व्यक्तित्व के प्रतिकूल पड़ने के कारण ही कदाचित् रामभक्ति की चर्चा से रहित है। पर चौथी और पाँचवीं तरंगों में सेनापति के अन्तःकरण में विद्यमान उनकी प्रगाढ़ रामभक्ति का अविरल प्रवाह फूट पड़ा है। रामभक्ति से सम्बन्ध सेनापति के इन कवित्तों में पर्याप्त नवीनता एवं मौलिकता भी दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने यहाँ राम-चरित के उन्हीं कथा-सूत्रों का वर्णन किया है जिनसे राम के सौन्दर्य, शील एवं शक्ति का प्रभाव व्यक्त होता है। वस्तुतः तुलसी की तरह सेनापति की भक्ति-साधना में भी सौन्दर्य, शील एवं शक्ति की ही उपासना है। उनके 'कवित्त रत्नाकर' के भक्तिपूर्ण कवित्तों के अध्ययन से यह स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि गोस्वामी जी की तरह उन्होंने भी अपने जीवन को राममय बनाकर राम का सान्निध्य प्राप्त कर लिया था।

यों तो सेनापति के आराध्य निश्चित रूप से भगवान् राम ही हैं क्योंकि अपने ग्रंथ के स्थल-स्थल पर उन्होंने 'सीतापति'[३] 'सियापति'[४] 'राजा राम'[५] आदि नामों का ही स्मरण किया है। परन्तु भगवान् कृष्ण के चरणों में भी उनकी अपार भक्ति थी। तभी तो

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२३

२ संवत सत्रह से छ में सेइ सियापति पाय।
सेनापति कविता सजी सज्जन सजों सहाय।।
—कवित्त रत्नाकर, पाँचवीं तरंग, कवित्त ८६

३ कवित्त-रत्नाकर, पहली तरंग, कवित्त ५ की अन्तिम पंक्तियाँ—
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कबि कान दै सुनत कबिताई है।

४ वही, पाँचवीं तरंग कवित ८६
संवत् सत्रह से छ में, सेई सियापति पाइ।
सेनापति कबिता सजी, सज्जन सजौ सहाइ।।

५ वहीं, कवित्त ३३—
चिंता अनुचित तजि, धीरज उचित
सेनापति ह्वै सुचित राजा राम जस गाइये।

उन्होंने संसार से विरक्त होकर वृन्दावन के कुंजों में निवास करने की अपनी उद्दाम आकांक्षा को व्यक्त करते हुए कहा था—

आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौ
डारौ लोक लाज के समाज विसराइ के।
हरिजन पुंजनि में वृन्दावन कुंजनि में
रहौ बैठि कहूँ तरबर तर जाइ के ॥[१]

यथार्थः सेनापति ने सभी अवतारों के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है। उन्हें सभी देवताओं की अभेदोपासना में विश्वास था। परन्तु भगवान् राम को अपने जीवन का केन्द्रबिन्दु बना कर उन्हीं की भक्ति में वे सर्वाधिक तल्लीन हो गये थे। ऋक्षराज जाम्बवान की चर्चा के क्रम में उन्होंने स्वयं इसी तथ्य की ओर स्पष्टतः इंगित किया है।[२] 'कवित्त रत्नाकर' की पाँचवीं तरंग 'राम रसायन वर्णन' में उन्होंने अपने उपास्य राम के साथ ही साथ कृष्ण, विष्णु, गंगा एवं शिव की भी प्रशस्तियाँ प्रस्तुत की हैं। वहीं एक स्थल पर व्याजस्तुति अलंकार के द्वारा विष्णु, राम और कृष्ण की निन्दा करते हुए उनके आन्तरिक अभेद का प्रतिपादन कर सेनापति के बड़े ही मधुर ढंग से उनकी समन्वयोमुखी स्तुति की है और उन मूर्ख 'अवगुनी' की आराधना के लिए अपनी उद्दाम आकांक्षा व्यक्त की है।[३] जब वे अपने आराध्य राम का अधीर होकर आवाहन करते हैं तब उनका उत्कट आत्म-निवेदन, अपार विश्वास मर्मस्पर्शी कारुण्य एवं भावावेश देखते ही बनता है।[४]

---

१ कवित्त-रत्नाकर, परिशिष्ट, कवित्त ७

२ कवित्तरत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त ७०—

"कीनी परिकरमा छलत बलि बामन की,
पीछे जामदगनि कों दरसन पायौ है।
पाइक भयो है लंक नाइक दलन हू कों,
दै कै जामवंती भलौ कान्ह कों मनायौ है ॥
ऐसे मिलि औरौ अवतारन कौं जामवंत,
अति सिय-कंत ही कों सेवक कहायौ है।
सेनापति जानी यातें सब अवतारन में,
एक राजा राम गुन-धाम करि गायौ है ॥"

३ कवित्त रत्नाकर, पाँचवी तरंग, राम रसायन वर्णन, कवित्त १९—

"धीवर कौं सखा है, सनेही बन चरन कौं,
गीध हू कों बंधु सबरी कों मिहमान है।
पंडव को दूत, सारथी है अरजुन हू कों,
छाती बिप्र-लात कों धरैया तजिमान है ॥
ब्याध अपराध-हारी, स्वान समाधान कारी,
करै छरीदारी, बलि हू कों दरबान है।
ऐसो अवगुनी ! ताके सेइबे कों तरसत,
जानिये न कौन सेनापति के समान है ॥"

४ वहीं, कवित्त ३ की अंतिम पंक्तियाँ—

"ऐसे रघुवीर कों, अधीर ह्वै सुनावो पीर,
बंधु-भीर आगे सेनापति भली मौन है।
साँवरे-बरन, ताही सारंग-धरन बिन,
दूजौ दुख-हरन हमारौ और कौन है ॥

तुलसी की तरह सेनापति के राम भी अपरिमित शक्ति-सम्पन्न, धर्म की धुरी धारण करने वाले राक्षसों की सेनाओं का संहार करने वाले, कलि के कलुषों को विध्वंस करने वाले, देवताओं, ब्राह्मणों एवं दीनों के कष्ट को दूर करने वाले, संसार भर में सुंदर महाराजाधिराज एवं पूर्णब्रह्म के अवतार हैं।[1] 'कवित्त-रत्नाकर' की पाँचवीं तरंग 'रामरसायन वर्णन' के मंगलाचरण में उन्होंने राम के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों की वन्दना की है। उनकी दृष्टि में आँखों से देखने पर राम का अनुपम विश्व-रूप दृष्टिगोचर होता है पर बुद्धि से विचार करने पर वह निराकार ही प्रतीत होता है। वस्तुतः वे राम के सगुण रूप को दृष्टि का तथा निर्गुण रूप को चिन्तन का परिणाम मानते हैं। सेनापति का यह विचार तुलसी के विचार के सर्वथा अनुकूल है।[2] उनके राम रघुबर बंस' 'भूषित'' हैं 'मुनि-जन-मानस हंस' हैं, 'त्रिभुवन पालन धीर' हैं ''भक्तवत्सल'' हैं और अपने भक्तों के स्वार्थ एवं अभिमान को समाप्त कर उनके सांसरिक बन्धन को खंडित कर देते हैं। उनकी अपरिमित शक्ति ने त्रिलोक विजेता रावण के मद को भी मर्दित कर दिया है। उनके अवतार का एकमात्र ध्येय अपने परिजनों का रक्षण एवं रंजत ही है।[3]

राम के तेज, प्रताप एवं सौन्दर्य युक्त व्यक्तित्व का सेनापति ने भी अपने ढंग से बड़ा ही सुन्दर चित्रांकन किया है।[4] कवि के अनुसार राम की दोनों भुजाएँ अपूर्व शक्ति के कोष हैं।[5] तुलसी की तरह इनके राम के व्यक्तित्व के अन्तर्गत भी अपरिमित शक्ति के साथ ही साथ अनंत शील का भी संयोग है। यही कारण है कि अपरिमित शक्तिसम्पन्न होते हुए भी परशुराम की उद्धंडता से वे जरा भी विचलित नहीं होते।[6]

राम की अद्‌भुत शक्ति एवं शील के साथ ही साथ उनके अनंत सौन्दर्य का भी सेनापति के भक्त हृदय ने अंकन किया है। राजा जनक की राज-सभा में सीता-स्वयंवर के अवसर पर राम के पदार्पण करते ही वहाँ उपस्थित सभी देवताओं राजाओं एवं राक्षसों की कांति कुण्ठित हो जाती है और वे सब लिखित चित्र की तरह राम को देखने लग जाते हैं। राम-रूपी सूर्य के उदय होते ही वहाँ कोई अन्य प्रकाश एवं अप्रकाश शेष नहीं रह जाता।[7] तुलसी ने भी इस अवसर पर इससे मिलती-जुलती बातें कहीं हैं।[8]

तुलसी की तरह सेनापति भी राम की मुसकान को चन्द्र को किरणों से अधिक उज्ज्वल मानते हैं।[9] उनकी दृष्टि में राम का तेज करोड़ो सूर्यों से, उनकी शक्ति करोड़ों कामदेवों

---

१ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त ७
२ कवित्त-रत्नाकर, पाँचवीं तरंग राम रसायन-वर्णन, कवित्त १
दोहावली, दो० ७
३ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण-वर्णन, कवित्त ३
४ ,, ,, ,, कवित्त ६
५ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त १०
६ वहीं, कवित्त २८
७ वहीं, कवित्त ११
८ मा० १.२५४
९ मा० १.२४३.५ (पू०)

से और उनकी दानशीलता करोड़ों कामधेनुओं से भी अधिक प्रभावशाली है। अन्ततः उन्हें ये सारे उपमान भी असत्य प्रतीत होने लगते हैं और उन्हें कोई ऐसी युक्ति ही प्रतीत नहीं होती जिससे वे अपने उपास्य की ईयत्ता का यथार्थ वर्णन कर सकें।[१] यहां निश्चय ही तुलसी की उक्ति 'निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै"[२] की ओर ही सेनापति ने भी प्रकारान्तर से इंगित किया है।

वस्तुतः सेनापति के राम राजाधिराज हैं। उनका साम्राज्य समस्त संसार भर में सदैव कायम है। कष्टों को दूर करने में वे सर्वथा समर्थ हैं। कोई भी देवता उनकी समकक्षता नहीं कर सकता है। राम के आश्रय का परित्याग कर किसी अन्य देवी-देवता का अवलम्बन ग्रहण करना मानो अमृत के समुद्र का परित्याग कर कूप का अवलम्बन लेना है।[३] जो चौदह भुवनों का एकच्छत्र सम्राट है, जिसका आश्रय ग्रहण करने पर मनुष्य सभी प्रकार के तापों से परित्राण पा जाता है, जिसकी ओर हृदय अपने आप आकर्षित हो जाता है, वही भगवान राम के सेनापति के सहायक हैं।[४] वे उन्हीं के कृपापात्र हैं और उन्हीं के दरबार का जूता उठाने वाले सेवक हैं।[५] भगवान राम के चरणों में अपनी प्रगाढ़ भक्ति के बल पर ही अपने ऊपर प्रभाव डालने में प्रयत्नशील कलियुग को भी उन्होंने फटकारा है।[६] उनका भक्त हृदय सदैव परम कृपालु एवं विश्वरक्षक के रूप में भगवान राम का दर्शन करता है। राम की शरणागति स्वीकार करने वाले रावण के अनुज विभीषण की चर्चा के क्रम में उन्होंने भगवान राम की दया एवं दान सम्बन्धी बड़े ही मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किए हैं।[७] उनके आराध्य राम का ध्यान सनकादि ऋषि करते हैं। वेद उन्हीं की कीर्ति का गायन करते हैं। शेष, सूर्य, चन्द्र एवं पवन अपनी आराधना से उन्हें ही प्रसन्न करना चाहते हैं। अपने उसी उपास्य राम को सेनापति अपनी पीड़ा से परिचित कराना चाहते हैं और दूसरे लोगों को भी यही नेक सलाह देते हैं। उनका तो यही निश्चत सिद्धान्त है कि श्याम वर्ण धुनर्धर राम के अतिरिक्त अन्य कोई भी संसार के कष्टों से जीव को कदापि मुक्त नहीं कर सकता।[८]

---

१ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग रामायण वर्णन, कवित्त ४—

मंद मुसकान कोटि चंद तें अमंद राजै,
दीपति दिनेस कोटि हू तें अधिकानिये।
....
....
ऐसी अति उकति जगति मो बतावो जासों,
राजाराम तीनि लोक नाइक बखानिये।।

दृष्टव्य-मा० ७.६१७—७.६२. (क) पू०

२ मा० ७.९२.६

३ मा० १.२४६.५

४ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त ७३

५ मा० २.२३४.२ (पू०)

६ कवित्त रत्नाकर, पाँचवी तरंग, राम रसायन-वर्णन, कवित्त २३

७ ,, चौथी तरंग, रामायण-वर्णन, कवित्त ३९-४०

८ वही, पाँचवीं तरंग, राम रसायन-वर्णन, कवित्त ३

तुलसी की तरह सेनापति का भक्त हृदय भी परम मंगलों के उद्गमस्थल भगवान राम के नाम को अमोघ एवं अनन्त शक्ति से पूर्णतः परिचित था। उनको दृष्टि में राम का नाम अमृत के समान है। शिव, हनुमान, विभीषण वाल्मीकि, ब्रह्मा, सनकादि इसी नाम का आश्रय ग्रहण कर इसी का यशोगान करते हुए इसी के प्रभाव से तरह-तरह की समृद्धियों पर पूर्णाधिपत्य करके अमर बन गये हैं। यह नाम भुक्ति एवं मुक्ति दोनों का ही दाता है। यथार्थतः मनुष्य की कामनाओं को पूर्ण करने के लिये यह साक्षात् कामधेनु है। सेनापति के अनुसार राम का नाम ही जिह्वा का विश्राम एवं संसार के सम्पूर्ण धर्मों का केन्द्रबिन्दु है।[1]

"मति मन्द तुलसीदास"[2] की तरह "मतिमन्द" "सेनापति"[3] की भक्ति-साधना में भी दीनता का स्वर स्पष्टतः परिलक्षित होता है। वस्तुतः सेनापति का भी हित-साधन राम के चरणों की कृपा से ही हुआ है।[4] भगवान राम के शरणापन्न होकर अपने अटल विश्वास एवं अपार आशा के बल पर उन्होंने भी अपने उद्धार के लिए उनसे निश्छल आत्म-निवेदन किया है।[5] भगवान राम के चरणों के प्रति प्रगाढ़ भक्ति, अपना अटल विश्वास, अपार आशा एवं निश्छल शरणागति ने भक्त सेनापति के व्यक्तित्व को एक अपूर्व शक्ति से मण्डित कर दिया है। वे कभी चिन्ता नहीं करते, मन को दुर्बल नहीं बनाते। दुर्जनों से सहायता की याचना नहीं करते और सदैव रामभक्ति के अपार आनन्द में सरावोर रहते हैं।[6] सेनापति भक्ति के भीतर जो दैन्य है उसमें पवित्र ओज के भी दर्शन होते हैं। तभी तो राजा राम के दरबार का जूता उठाने वाला यह दीन सेवक मदान्ध कलिकाल को ओज भरी फटकार भी सुनाता है।[7]

तुलसी की तरह सेनापति भी सच्चा भक्त उसे ही मानते हैं जो स्वार्थों के संसार को विवेक के प्रकाश में स्वप्नवत् समझ लेता है। स्वार्थों की संकुचित परिधि का अतिक्रमण कर जो भजनानन्दी मूर्त्ति विश्वरूप रघुवंशमणि भगवान राम की सेवा अपने आपको समर्पित कर दे वस्तुतः वही सच्चा भक्त है। ऐसे भक्त समस्त संसार को भगवान का रूप समझकर उसकी सेवा में संलग्न रहते हैं और सारा संसार उनकी सेवा में संलग्न रहता है। भक्त रूपी भगवान की सेवा करके सभी लोग अपनी मनोभिलषित वस्तुएँ प्राप्त कर लेते हैं। सेनापति का भक्त हृदय भजन के अमोघ प्रभाव से पूर्णतः परिचित था। तभी तो उन्होंने भजन के आनन्द एवं माधुर्य को अनिर्वचनीय घोषित किया है।[8]

---

१ कवित्त रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त ७५
मा० १.१९.१—१.२८.१; ४ श्लोक २ की अन्तिम पंक्ति—
"धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्री रामनामामृतम्॥"

२ मा० १.१०३ (उ०); ६.१२१.१८; ७.१३०.१६

३ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग; रामायण वर्णन, कवित्त २

४ वहीं

५ कवित्त-रत्नाकर, पांचवीं तरंग; राम रसायन-वर्णन, कवित्त ७

६ ,, ,, ,, कवित्त ४
मा० ७.४६.३

७ कवित्त-रत्नाकर, पाँचवीं तरंग, राम रसायन वर्णन, कवित्त २३

८ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग रामायण-वर्णन, कवित्त ६९
मा० ३.३९.५; १.८.२; ७.११२ (ख); ७.४७.५

तुलसी की तरह सेनापति के हृदय में भी भगवान राम की जन्मभूमि अयोध्या एवं वहां की प्रजाओं के प्रति प्रभूत आकर्षण है। उनकी दृष्टि में राम को राजा के रूप में प्राप्त करने वाली अयोध्या को तुलना किसी अन्य राजधानी एवं राजा के प्रेम से नहीं की जा सकती है। त्रिलोकाधिपति भगवान राम ने इस अयोध्या को एक शाश्वत दिव्य धाम के रूप में परिणत कर दिया है। सेनापति के अनुसार यह जड़ नगरी भी सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर अपने पति राम के साथ दिव्य लोकों में जाकर निवास करती है। उसके अन्तः-करण में राम के प्रति अपार मधुर भाव सुरक्षित हैं।[1]

सेनापति ने राम के हृदय में विद्यमान अपनी प्रजाओं के प्रति प्रेम का भी बड़ा ही मार्मिक अंकन किया है। अयोध्या में निवास करने वाली प्रजाओं की तो सारी मनोकामनाएँ पूरी हो गयीं। भगवान राम के आश्रित होने के कारण वे इन्द्र और यमराज से भी भयभीत नहीं होते थे। यथार्थतः अयोध्या में निवास करने वाले जीव ही सच्चे सनाथ हैं और राजा राम की स्वामिता ही सच्ची स्वामिता है—

साँचे हैं सनाथ एक साकेत-निवासी जीउ,
सांचो है रजाई एक राजा रघुनाथ की ॥''[2]

मर्यादावादी भक्त सेनापति ने भी तुलसी की तरह रावण के द्वारा छाया-सीता के अपहरण का ही उल्लेख किया है।[3]

तुलसी के भक्त शिरोमणि हनुमान से सेनापति के हनुमान का भी काफी साम्य है। लंका जाते समय रामबाण की तीव्रगति से वे भी अमोघ यात्रा करते हैं। अनन्त शक्ति सम्पन्न भगवान राम के चरणों की सेवा एवं स्पर्श से उनमें भी अनन्त तेज एवं शक्ति का प्रादुर्भाव हो गया है। उनके द्वारा लंका दहन का दृश्य इसी तथ्य का परिचायक है।[4]

तुलसी को तरह सेनापति की भी वही मान्यता है कि राम का वर्णन करते हुये ब्रह्मा भी थक जाते हैं और उनके रहस्यों से अवगत नहीं हो पाते। ऐसी स्थिति में वे मौन रहना ही अच्छा समझते हैं। पर वाणी के वरदान के बावजूद, राम के सौन्दर्य एवं प्रभुता का वर्णन किये बिना उनसे रहा भी नहीं जाता।[5] सेनापति ने भी गोस्वामीजी के स्वर में स्वर मिलाकर राम-कथा की अनन्तता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है और उन सबके वर्णन में अपनी विवशता

---

१ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण वर्णन, कवित्त ७१
मा० ७.४. ३-४; ७.४.७

२ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण-वर्णन, कवित्त ७२

३ ,, ,, ,, कवित्त ३१
द्रष्टव्य मा० ३.२४.३-४

४ वही, कवित्त ३२–३८
द्रष्टव्य मा० ५.१.८

५ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण-वर्णन, कवित्त ५
मा० १.१३.१

को सूचित करते हुये कुछ स्थलों से सम्बन्धित कवितों की ही सृष्टि की है।[1] इस तरह कवित्त रत्नाकर के अधिकांश कवित्तों में सेनापति के हृदय में विद्यमान भगवान राम के प्रति प्रगाढ़ भक्ति का अविरल प्रवाह उन्मुक्त होकर फूट पड़ा है। उपर्युक्त स्थलों पर मानस की भक्ति का प्रभाव तो है ही पर साथ ही उनमें कवि की मौलिकता भी स्पष्टतः परिलक्षित हो रही है। सेनापति ने राम के प्रभाव को स्वयं अपने हृदय से अनुभव करके अभिव्यक्त किया है। यही कारण है कि उनकी अभिव्यक्ति में अनुभूति की सत्यता एवं सुकुमारता भी है। वस्तुतः कवित्त-रत्नाकर में प्रतिपादित भक्ति "मानस" में प्रतिपादित भक्ति का प्रांजल प्रतिरूप है।

६. "नृत्य राघव मिलन कवितावली"

"नृत्य राघव मिलन" के रचयिता परम रामभक्त महात्मा रामसखे जी हैं। इस ग्रंथ का प्रणयन संवत् १८०४ में हुआ था।[2] इसका नाम 'नृत्य राघव मिलन' इसलिये पड़ा कि इसमें बारह हजार राज कन्याएँ तथा अनेक गन्धर्व कन्याएँ ब्रह्म मुहूर्त में महाराज रामचन्द्र एवं महारानी सीता को जगाने आती हैं।[3] यह ग्रन्थ रसिक सम्प्रदाय का है और इस सम्प्रदाय में काफी समादृत भी है। इसमें भगवान् के रूप, गुण, धाम एवं रसिक साधकों के लक्षण इत्यादि विषयों का एकान्त रमणीय विवेचन किया गया है। महात्मा राम सखे जी ने रसिक भक्त के जो लक्षण बतलाये हैं, वे तुलसी के "मानस" के भिन्न-भिन्न प्रकरणों में वर्णित भक्त के लक्षण से काफी प्रभावित हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियों का अवलोकन ही पर्याप्त होगा—

> "चित्त संतोष महाधन लीने। रघुबर की लीलन्ह अति भीने।।
> पूजैं नहीं पितर बहुदेवा। रामहि की भावैं जिय सेवा।।
> राखैं एक राम विस्वासा। करैं न त्रिभुवन दूसरी आसा।।
> राम कुटंब कुटंब निज जाने। सपने जगनातो नहिं ठानै।।
> सीतापति कृत जग सब देखे। याते सब जिय सम करिलेखे।।
> त्रिजगयोनि आदिक जीवनगन। देहि न दुख काहू बच क्रम मन।।"[4]

जिस प्रकार तुलसी ने अयोध्यापुरी एवं सरयू नदी को मनोहर एवं पावन कहा है

---

१ कवित्त-रत्नाकर, चौथी तरंग, रामायण-वर्णन, कवित्त ६
मा० १.३३.५—६; ७.५२.२

२ संवत अष्टादश चतुर शुक्ल मधुर मधु तीज।
भयो नृत्य राघव मिलन उद्भव सब रस बीज।।
—नृ० रा० मि०, पृ० १२३

३ घटिकार्द्ध निशा अवशेष जानि यूथ-यूथ
सजिकै श्रृंगार आइ नागरी नवीनी हैं।
प्रिया मन भावन जगावन को आतुर ह्वै
द्वादश सहस्र राजकन्या रस भीनी हैं।।
नृ० रा० मि०, पृ० १

४ नृ० रा० मि०, पृ० ११७-११८
द्रष्टव्य—मा० १.८.२; २. १२९.४; ३.३६.४-५; ७.३८.१-७;७. ११२ (ख)

उसी प्रकार अयोध्या एवं सरयू को रामसखे जी ने भी मंगलमय कहा है[1] और उन्हीं की तरह अयोध्यावासियों की महिमा का गायन किया है।[2] जिस तरह तुलसी ने भगवान् के समर-विजय- चरित के श्रवण से भगवान् द्वारा विजय-विवेक एवं विभूति प्रदान किये जाने की बात कही है,[3] उसी तरह रामसखे जो ने सीताराम के प्रातःकालीन ध्यान के पठन एवं श्रवण से उनकी कृपा प्राप्ति की चर्चा की है।[4] तुलसीदास जो के समान रामसखे जी ने भी गुरु-महिमा का बखान किया है।[5] जिस प्रकार राम प्रेमियों के हृदय में सांसारिक ऐश्वर्यों के प्रति वैराग्य होने का वर्णन तुलसीदास जी करते हैं, उसी प्रकार रामसखे भी।[6] जिस प्रकार तुलसीदास शिवजी को अपने हृदय में राम का ध्यान करने वाला बतलाते हैं। उसी प्रकार की बात रामसखे जी भी करते हैं।[7] वस्तुतः तुलसी के समान ही रामसखे भी राम के प्रेम में मस्त और उनकी गंभीर भक्ति के प्रचारक हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि तुलसी जहाँ सेव्य-सेवक भाव पर विशेष बल देते हैं, वहाँ राम सखे शृंगार भाव पर। उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

कहुं रघुपति संग धरि गलबाहीं। नृत्यत रंग महल के माहीं॥
सिय ज्यों करत केलि प्रभु संग। चुवन मिलन आदि जेते रंग॥[8]

कहीं-कहीं कवि ने अपनी इस कृति में तुलसी के "मानस" की शब्दावली भी ग्रहण की है। दोनों ग्रंथों की कुछ समानान्तर पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं—

(क) बेतपानि रच्छक चहु पासा।

—मा० ६.१०८.६ (पू०)

---

१ मंगल प्रमोदबन सरयू तट रत्नाद्रि चिंतामणि भूमि अवध मंगल की खानी हैं।
—नृ० रा० मि०, पृ० ७

२ धनि दशरथ धनि अवध त्रिय धनि रघुबँशिन भीर।
....
काम रूप सब अवध निवासी।
—नृ० रा० मि०, पृ० ३१

३ मा० ६.१२१ (क)

४ प्रात ध्यान सिय लाल को मंगल अष्टक नाम।
पढ़े सुने तिनपै सदा द्रवैं जानकी राम॥
—नृ० रा० मि०, पृ० ७, दो० १

५ गुरु संगति लहि आतम ज्ञाना। छूटय लिंग शरीर प्रमाना॥
—नृ० रा० मि०. पृ० ६

६ मा० २.३२४.८
नृ० रा० मि०, पृ० २६
"यह छबि राम जासु उर लागी। सो सब त्यागि भये बैरागी॥"

७ मा० १.१११.७-१.१११
नृ० रा० मि०, पृ० २६—
राज रूप रघुनाथ को सब रुपन को राय।
रामसखे शिव मगन नित तासु ध्यान उरलाय॥

८ नृ० रा० मि०, पृ० ११४-११५

बेतपानि रक्षक समय प्रेम नियम सम्बन्ध ।।

--नृ० रा० मि० पृ० १३, दोहा २ (उ०)

(ख) बाजे नभ गहगहे निसाना । देव बधू नाचहिं करि गाना ।।

मा० १.२६२.४

बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा ।।

—मा० १.२५५.३ (उ०)

द्रष्टव्य मा० १.१९१.७; १.३०९.४; ६.१०९ (क); ७.१२.९-१०

बाजा बजै नचैं **देव बधू** नभ नाच जनावैं सेवा फूलन्ह झर ।

—नृ० रा० मि, पृ० ३३

(ग) कतहुँ बिरिद बंदी उच्चरहीं । कतहुँ बेद धुनि भूसुर करहीं ।।

—मा० १.२९७.६

ब्राह्मण वेद अशीष पढ़े चहूँ वंश प्रशंसन्ह भाट सुनावैं ।।

—नृ० रा० मि०, पृ० ३४

(घ) करुनामय मृदु रामसुभाऊ

—मा० २.४०.३ (पू०)

कृपाबंत रघुनाथ सुभावा ।।

—नृ० रा० मि०, पृ० १११

(ङ)..................... उरन्हि तुलसिका माल । —मा० १.२४३ (पू०)

तुलसी की धारहि गलमाला —नृ० रा० मि०, पृ० ११९

(च) मंत्र राजु नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ।।

—मा० २.१२९.६

राममंत्र षड अक्षर काना । करै यही उपदेश प्रधाना ।।

—नृ० रा०मि०, पृ० ११९

(छ) **जोग भोग** महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ।।

—मा० १.१७.२

योग भोग दोउ सम करि लखैं । रामरूप बिनु एक न पेखैं ।।

—नृ० रा० मि०, पृ० १२१

उपर्युक्त अध्ययन "नृत्य राघव मिलन" पर "मानस" की भक्ति के प्रभाव का स्पष्टतः परिचायक है ।

७ : "राम मंगल"

"राम मंगल" की रचना काष्ठजिह्वा स्वामी ने की है । यों तो वे सन्यासी थे, फिर भी राम भक्तों में उनका अग्रगण्य स्थान है । कहा जाता है कि एक बार गुरु से इनका किसी बात पर विवाद हो गया । इस घटना के पीछे गुरु अवज्ञा का इन्हें इतना पश्चाताप हुआ कि आजन्म मौन रहने का व्रत ले लिया और जिस इन्द्रिय (जिह्वा) के द्वारा ऐसे "पाप" में इन्हें प्रवृत्त होना पड़ा था उस पर काठ की एक खोल चढ़ा ली । काष्ठजिह्वा स्वामी नाम इनका इसलिए पड़ा।"[1] डा० भगवतीप्रसादसिंह जी की दृष्टि में स्वामीजी का

---

१ डा० भगवतीप्रसाद सिंह, रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४५०

समय संवत् १८९७ माना जा सकता है,[1] किन्तु यह सम्भव नहीं प्रतीत होता क्योंकि "राम मंगल" जो उनके "भाषातरंग" नामक ग्रन्थ का एक भाग है, सन् १८५२ ई० में बनारस के सुधारक प्रेस में छपा था।[2] सन् १८५२ ई० का अर्थ है विक्रम संवत् १९०९ और यह सम्भव नहीं है कि स्वामी जी ने केवल १२ वर्ष की अवस्था में ही इस ग्रन्थ की रचना की होगी। अतः उनका जन्म संवत् १८९७ से पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व होना चाहिए। राम मंगल के अतिरिक्त "श्री जानकी मंगल", "जानकी बिन्दु", "अयोध्या बिन्दु", "मथुरा बिन्दु", "श्याम रंग", "श्याम सुधा", कृष्णसहस्र परिचर्या", "वैराग्य प्रदीप" आदि प्रभृति उनकी रचनाएँ हैं,[3] पर उनमें "राम मंगल" विशेष महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में स्वामी जी ने भगवान राम के रूप का ध्यान, पुनः नाम, लीला, गुण और धाम की दिव्यता पर प्रकाश डाला है और इस दृष्टि से इस ग्रन्थ पर "मानस" की भक्ति का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यद्यपि इनका सम्बन्ध रसिक-सम्प्रदाय से जोड़ा जाता है तथापि इनकी उपासना माधुर्य भाव से न होकर दास्य भाव से होती थी।[4]

काष्ठजिह्वा स्वामी भी गोस्वामी तुलसीदास की तरह राम को सगुण एवं निर्गुण दोनों ही मानते हैं। उदाहरणार्थ—

शारद नभ अस साँवर राउर रंग है।
सगुन अगुनहूँ लखावत लखि मन वंग है॥[5]

स्वामी जी भगवान राम को सत्स्वरूप, लक्ष्मण को ज्ञान रूप तथा सीता को भक्ति रूप मानते हैं।[6] इनकी यह मान्यता बहुत कुछ तुलसीदास से मिलती-जुलती है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ वे भगवान को सत्स्वरूप तथा लक्ष्मण को ज्ञान रूप मानते हैं वहाँ तुलसी ने भगवान को ज्ञान और लक्ष्मण को वैराग्य रूप कहा है।[7]

---

१ वहीं
२ इसकी एक प्रति अयोध्या निवासी पं० रामकुमार दास जी के "श्री रामग्रन्थागार" में आज भी वर्तमान है।
३ डा० भुवनेश्वर नाथ मिश्र "माधव" रामभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना, पृ० ३३९–३४०
४ वैराग्य प्रदीप, पृ० ८५, पद—१-२—

चरण शरण में आई सिय जू को खबर करो।
कर्म ज्ञान वैराग्य बहाये इनते कुछहू सार न पाये।
एक दीनता लई सहाये सन्तन यही सिखाई।
अहं भाव को धूप बनायो मन्दिर में महमह महकायो।
दास भाव तन मन में छायो गुरु असि राह बताई॥

५ राम मं०, रूप विचार, पृ० १, पं० सं० २
६ वही, पृ० ३, पं० सं० १४
७ मा० २.३२१

जिस प्रकार तुलसी ने नाम महिमा गायी है, उसी प्रकार इन्होंने भी नाम पर विचार किया है।[1]

तुलसी ने राम विमुख की भर्त्सना की है और स्वामी जी भी "सियाराम विमुष" का मुख नहीं देखना चाहते।[2] कहीं-कहीं तो इनकी पंक्तियाँ किंचित हेर-फेर के साथ "मानस" से सीधे ले ली गई प्रतीत होती हैं। जैसे मानसकार का कथन है—"जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ॥"[3] इसी तथ्य को रामगमंलकार ने यों व्यक्त किया है—"जैसी काछन काछिये तैसोई नाचियै।"[4]इस तरह उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि "राममंगल" "मानस" की भक्ति से प्रभावित है।

८. "विश्राम सागर"

"विश्राम सागर" के रचयिता अयोध्या के एक सुप्रसिद्ध महात्मा बाबा रघुनाथदास रामसनेही जी हैं। "रामचरितमानस" के बाद लोक प्रचार की दृष्टि से "विश्राम सागर" का भी एक विशिष्ट स्थान है। इस ग्रन्थ की रचना सम्वत् १९११ में हुई थी।[5] इसमें तीन खण्ड हैं—

इतिहासायन, कृष्णायन और रामायण।

इतिहासायन खण्ड में अनेक पुराणों से संग्रहीत कथाएँ संक्षेप में कही गई हैं। कृष्णायन खण्ड में भगवान कृष्ण का तथा रामायण खण्ड में भगवान राम का चरित्र वर्णित है। "बिश्राम सागर" का "मानस" से मिलाकर पाठ करने पर इसके पृष्ठ-पृष्ठ पर तुलसी का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यह प्रभाव केवल भक्ति ही पर नहीं है अपितु काव्य-कला पर भी है। यथार्थतः भाव, भाषा एवं शैली सभी दृष्टियों से बिश्रामसागरकार मानसकार से पूर्णतया प्रभावित हैं। इस ग्रन्थ की रचना में मानस से ही नहीं बल्कि अन्यान्य रामायणों से भी कवि ने काफी सहायता ली है।[6] जिस तरह मानसकार ने अपने ग्रन्थ के

---

१ रा० मं०, नाम विचार, पृ० ३-५, पं० सं० १-८
नाम प्रतिष्टा ब्रह्मज्ञान को मूल है ॥
ताको मापिक बोलत यह तो भूल है ॥४॥
सब्द ब्रह्म की जान नाम तहँ मनु भने ॥
नामहिं को बल पाई विधाता जग जने ॥५॥
नामहिं के बल भेंटत सीताराम हैं ॥८॥"

२ राम मं०, पृ० ६, पं० सं० १२

३ मा० २.१२७.८ (उ०)

४ राम मं०, पृ० ५—"अथ लीला गुन धाम विचार"—पं० सं० १ (पू०)

५ आचार्य शुक्ल, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० ४७८

६ (क) यह मैं गिनती जॉन गिंनाई। वृहंद रामायण में सो पाई ॥
बाल्मीकि पुनि मुनि कछु जानी। युद्ध काण्ड में कह्यो बखानी ॥
—बि० सा०, पृ० ५४३

(ख) वृहद्रमायण केर मत, कहा कछुक रघुनाथ ॥
(ग) चन्द्रोदय परबोध मत, मूल सार शुक गाथ। —बि० सा०, पृ० ५६३
वरन्यो सुन्दरकांड शुभ, सुखप्रद जन रघुनाथ ॥ —बि० सा०, पृ० ५७२

प्रारम्भ में ही "मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई।"[१] का उद्‌घोष किया है, उसी तरह बिश्रामसागरकार भी कहते हैं।

"आगे मुनिन कथन जो कीन्हा।
सोई में भाषा करि दीन्हा॥
बहु ग्रन्थन मा रहै जो बाता।
सो एकै मा धरी सोहाता॥"[२]

वस्तुतः इस ग्रन्थ के प्रणयन में बाबा रघुनाथदास ने तुलसी के कथन "मधुकर सरिस सन्त गुनग्राही।"[३] को अक्षरशः चरितार्थ कर दिया है।[४]

अपने ग्रन्थ के इतिहासायन खण्ड के प्रारम्भ में कवि ने राम, सीता, सन्त, गुरु, गणेश, सरस्वती, शिव आदि तथा "अवध", "अवधपुरवासी", "सरयू" आदि की जो वन्दना की है वह मानस के वन्दना-प्रकरण से सर्वथा प्रभावित है।[५] इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने प्रायः उन्हीं देवी-देवताओं को ग्रहण किया है जो तुलसी की वन्दना में आ चुके हैं। मानसकार की तरह ही बिश्राम सागरकार ने भी बार-बार अपनी दीनता एवं विनम्रता प्रदर्शित की है।[६] तुलसी की तरह वे भी "राम चरित्र" की अपारता स्वीकार करते हैं।[७] तथा उससे अपनी वाणी को पवित्र करने का साधन मानते हैं।[८] इनके राम-नाम वन्दना प्रकरण पर भी मानस

---

१ मा० १.१३.१०

२ बि० सा०, पृ० १२

३ मा० १.१०.१६ (उ०)

४ "विविध ग्रन्थ बहु विधि सुमन, मम मति माखी जान।
बिश्रामोदधि ग्रन्थ मधु, कीन्ह इकट्ठे आनि॥"

—बि० सा०, पृ० ६२१

५ मा० १ श्लो० १-६; १ सो० १-५; १.१६.१-१.१८.१०
बि० सा०, पृ० ३-५; ७, ८

६ मा० १.८.३-९,१.१२.३-६
बि० सा०, पृ० ५—"मोहिं न ज्ञान बुद्धि बल चतुराई।
कीन्ह चहौं हरि कथा सुहाई॥
....
....
जिमि बालक बोलत तुतराई।
सुनत मातु पितु अति हरषाई॥"

७ रामचरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनैं पारा॥

—मा० ७.५२.२

रामचरित विचित्र अपारा। गावत निगम न पावत पारा॥

—बि० सा०, पृ० ५

८ निज गिरा पावनि करन कारन..............................

—मा० १.३६१ ९

९ करन पवत्र गिरा अघहारी।

—बि० सा०, पृ० ४

की नाम वन्दना का पूरा-पूरा प्रभाव है ।[१] राम-नाम की अपार महिमा की घोषणा इन्होंने इस प्रकरण के अतिरिक्त अपने ग्रन्थ में अन्यत्र भी की है ।[२] जिस प्रकार तुलसी ने "रामचरितमानस" नाम की महिमा की चर्चा करते हुए उसे कानों से सुनते ही विश्राम देने वाला बतलाया है उसी प्रकार रघुनाथदास ने बिश्रामसागर नाम श्रवण करने से लोगों के आराम पाने का उल्लेख किया है ।[३] मानस के सम्बन्ध में तुलसी ने लिखा है—

"जे एहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥
होइहहिं रामचरन अनुरागी । कलिमल रहित सुमंगल भागी ॥[४]

अपने ग्रन्थ के सम्बन्ध में रघुनाथदास भी कहते हैं—

जे सुनहिं समुझहिं प्रीति कर, हरिचरण में चित्त लाइहैं ।
रघुनाथ ते गोपद सरिस, संसार यह तरि जाइहैं ॥[५]

तुलसी की तरह ही इन्होंने भी रामभक्ति से परांमुख रहने वाले लोगों की तीव्र भर्त्सना की है ।[६]

बाबा रघुनाथदास के बिश्राम सागर का रामायण खण्ड भी रामचरितमानस की तरह सात काण्डों में ही विभक्त है और इनके नामकरण भी मानस के सात काण्डों के नामकरण से सर्वथा अभिन्न हैं । रामायण खण्ड के बालकाण्ड से ही पुनः मानस की भक्ति का प्रभाव परिलक्षित होने लगता है । उदाहरणार्थं राम के सम्बन्ध में तुलसी कहते हैं—

(क) संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना । उपजहिं जासु अंस ते नाना ।[७]

(ख) बिधि हरिहर बंदित पद रेनु ॥[८]

---

१ मा० १.१९.१—२.२८.१—"बन्दउँ राम नाम रघुबर को ।..........
बि० सा०, पृ० ६—"बन्दौं रामनाम अविनासी ।..................

२ (क) जो सुमिरत तब नाम ते छूटत अभिमान ते ।
—बि० सा०, पृ० ६१३

(ख) पावन को पावन करन, शिव को धनु मुनि पर्ण ।
शुचि संतन के प्राण हैं, राम नाम दोउ वर्ण ॥
—वही, पृ० ६२१

३ रामचरित मानस एहि नामा । सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा ॥
—मा० १.३५.७

बिश्राम सागर नाम । सुनि लहैं नर आराम ॥ —बि० सा०, पृ० ६

४ मा० १.१५.१०-११

५ बि० सा०, पृ० ११

६ मा० १.११३. २-७

बि० सा०, पृ० १३—"शीश भार श्रुति सर्प बिलग्रह मलमग समलेन ।
....
... .
दारुयोषिता सरिस सो धावत नावत शीश ।"

७ मा० १.१४४.६

८ मा० १.१४६.१ (उ०)

तो रघुनाथदास कहते हैं—

(क) विधि हरिहर मीशं जानकीशं नमामि ॥[1]

(ख) विधि हरिहर ध्यावत जिन्हें ··· ···· ···· ····[2]

आगे चलकर रघुनाथदास कहते हैं—

कथा अलौकिक कुशल सुनि, करै न मन सन्देह ।

राम अनन्त अनन्त गुण, कतहुँ होयगो येह ॥[3]

यथार्थतः यह पद्य मानस के—

कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी । नहिं आचरजु करहिं अस जानी ॥

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा विस्तार ।

सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल विचार ॥[4]

की छायामात्र है। छाया ही नहीं बल्कि शब्द और पंक्तियों का स्पष्ट ग्रहण है। इसी तरह शिव-पार्वती-संवाद,[5] अवतार के कारण,[6] रावण के घोर अत्याचार से त्रस्त पृथ्वी एवं देवतादि की करुण पुकार,[7] भगवान् का वरदान,[8] उनका प्राकट्य[9] और बाल-लीला[10] विश्वामित्र का राजा दशरथ से राम-लक्ष्मण की याचना,[11] अहल्या-उद्धार,[12] राम-लक्ष्मण

---

१ बि० सा०, पृ० ३७८
२ वही, पृ० ६१८
३ वही, पृ० ३७८
४ मा० १.३३.४–१.३३
५ मा० १.१०५.८–१.१०८
बि० सा०, पृ० ३७९
६ मा० १.१२१.२–८
बि० सा०, पृ० ३७९–"यहि विधि हेतु हजारन जानो।......................."
७ मा० १.१८३.४—१.१८६
बि० सा०, पृ० ३९३–९४
८ मा० १.१८७.१–७
बि० सा०, पृ० ३९४—"अब सब निर्भय होउ सुर······मरिहौं शत्रु तुम्हार ॥"
९ मा० १.१९१.१–१.१९६.२—"नौमी तिथि मधुमास पुनीता।............
देखि महत्सव सुर मुनि नागा, चले मगन बरनत निज भागा ॥"
बि० सा०. पृ० ४००–४०३—"............राम जन्म कर अवसर आवा।
देखि महोत्सव सुर मुनि सारे। प्रमुदित निज निज भवन सिधारे ॥"
१० मा० १.१९८.५–१.२०४.२
बि० सा, पृ० ४०८-४१२
११ मा० १.२०६.२—१.२०९
बि० सा०, पृ० ४२७—४३२
१२ मा० १.२१०.११—१.२११.८
बि० सा०, पृ०४३३-४३४

को देखकर जनक की प्रेम-मुग्धता,[1] जनकपुर तथा पुष्पवाटिका-निरीक्षण,[2] सीता की पार्वती-पूजा,[3] स्वयंवर-प्रसंग,[4] परशुराम-संवाद[5] आदि के जो वर्णन बिश्राम-सागरकार ने किये हैं, उन पर मानस की पंक्ति-पंक्ति का पूर्णतः प्रभाव परिलक्षित होता है। विवाह होने के बाद अपने जामाता राम को बिदा करते समय मानसकार के जनक का कथन है—

"राम करौं केहि भांति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा ॥[6]

— — — —

सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई ॥[7]

— — — —

बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरे चरन जनि भोरें ॥

सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरन काम रामु परितोषे ॥

करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने ॥[8]

इसी तथ्य को बिश्रामसागरकार ने यों व्यक्त किया है—

"राम करहुँ किमि सुमुख बड़ाई। चिदानन्द तुम सब सुखदाई ॥

सेवक समुझि दरशर्म्वहिं दीन्हों। सब विधि ते आपन करि लीन्हों ॥

तदपि एक बर दीजै अबहूँ। मन तव पद परिहरै न कबहूँ ॥

सुनि रघुपति श्वशुरे सन्मान्यो। पितु वशिष्ठ कौशिक सम जान्यो।"[9]

"मानस" के बालकाण्ड को समाप्त करते हुए तुलसी ने लिखा है—

"सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु ॥"[10]

---

१ मा० १.२१६.१–७ (पू०)
बि० सा०, पृ० ४३५

२ मा० १.२१८.१—१.२३४
बि० सा०, पृ० ४३६—४३९

३ मा० १.२३५.४–१.२३६
बि० सा०, पृ०४३९–४०

४ मा० १.२४०.१–२६७
बि० सा०, पृ० ४४२—४४६

५ मा० १.२६८.२—१.२८५.७
बि० सा०, पृ० ४४८—४५४

६ मा० १.३४१.४

७ मा० १.३४२.१

८ मा० १.३४२.५—५.७

९ बि० सा०, पृ० ४७०

१० मा० १.३६१

इसी तरह विश्राम सागर के रामायण खण्ड के बालकाण्ड के अन्त में बाबा रघुनाथ-दास भी कहते हैं—

"सिय राम जन्म विवाह मंगल मुदित सुनहिं जे गाइहैं ।
रघुनाथ ते पर कृपा करि हरि जगह में सुख पाइहैं ॥"[1]

ऐसे ही अयोध्या काण्ड में राम-वन-गमन के समय राम-लक्ष्मण-संवाद[2] लक्ष्मण-सुमित्रा-संवाद,[3] निषाद-लक्ष्मण-संवाद,[4] केवट-प्रेम,[5] राम-भरद्वाज संवाद,[6] मार्ग-वासियों का प्रेम,[7] राम-वल्मीकि-संवाद,[8] भरत-कौशल्या-संवाद,[9] वशिष्ठ तथा भरत का

---

१ बि० सा०, पृ० ४७३

२ (क) मा० २.७१.६–"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ।
बि० सा०, पृ० ४८३—"ज्यहि नृप राज्य प्रजा दुख पावै । अवशि अधिप सो नरक सिधावै ॥"

(ख) मा० २.७२.४-८
बि० सा०, पृ० ४८३—"नाथ बात जो कही तुम, ताहि करें नर सोइ ।
कीरति सुगति विभूति तिय, तनुज जाहि प्रिय होइ ॥
मोहिं एक प्रभु तुमते नाता । अपर न जानहुँ गुरु पितु माता ॥
त्यहिते तजों न किंकर जानी ।……………………

३ मा० २.७४.-२.७५.८
बि० सा०, पृ०४८—"तात राम सिय तव पितु माता । रहिहैं जहाँ अवध सुखदाता ॥
करेहु तात सोइ बात बिचारी । ज्यहि न राम सिय होइँ दुखारी ॥"

४ मा० २.९०.५-२.९४.१
बि० सा०, पृ ४७८-८८—"सोवत प्रभुहि निषाद निहारा ।
दुखित लषण ते वचन उचारा ॥
तात परम परमारथ सोई । रघुवीर चरण रति होई ॥"

५ मा० २.१००.३-२.१०२
बि० सा, पृ० ४८८-८९—"माँगी नाव न केवट लावा । कहै तुम्हार मरम मैं पावा ॥
सुनि प्रभु ताहि भक्ति वर दीन्हा ।"

६ मा० २.१०६.७-२.१०७
बि० सा०, पृ० ४८९— —
आजु सुफल मम जपतप ज्ञाना । तीरथ बरत योग मख दाना ॥
अस कहि मधुर मूल फल दीन्हें । सबन सहित प्रभु भोजन कीन्हें ॥"

७ मा० २.११४.१-२.१२२
बि० सा०, पृ० ४८९-९१—"ग्राम निकट ज्यहि निकसहिं जाई ।
थकित होहिं लखि लोग लुगाई ॥
उदय भये कछु भाग्य हमारे । भरि नयनन जो इन्हें निहारे ॥"

८ मा० २.१२४.५-२.१३२.३
बि० सा०, पृ० ४९१-९२

९ मा० २.१६३.८ (उ०)—२.१६९.५
बि० सा०, पृ० ४९७-९८

निषाद-मिलन,[1] भरत-भरद्वाज-संवाद,[2] चित्रकूट की सभा[3] आदि; अरण्य काण्ड में सीता को अनसूया का उपदेश,[4] शरभंग-प्रसंग,[5] सुतीक्ष्ण की प्रेम-विवलता,[6] राम के सौन्दर्य का अवलोकन कर खरदूषण की मुग्धता,[7] खरदूषण वध पर रावण का संकल्प,[8]—मारीच-प्रसंग,[9] माया-सीता को रखकर सीता का अग्नि-प्रवेश,[10] जटायु-प्रसंग,[11] आदि; किष्किन्धा काण्ड में राम-सुग्रीव-संवाद,[12] बालि-राम-संवाद,[13] सुग्रीव द्वारा बन्दरों को राम कार्य करने का उपदेश,[14] जाम्बवंत-हनुमान्-संवाद,[15] आदि; सुन्दरकाण्ड में हनुमान् विभीषण

---

१ मा० २. १९३.५-२.१९५
बि० सा०, पृ० ५०१

२ मा० २.२०६.३-२.२१५
बि० सा, पृ० ५०२-५०३

३ मा. २.२८७.१-२.३१२
बि. सा., पृ. ५११-५१४

४ मा. ३.५.१-३.५ (ख)
बि. सा., पृ. ५१८

५ मा० ३.७.८-३.९.२
बि. सा., पृ. ५१९

६. मा०३.१०.१-३.१२.१
बि. सा., पृ. ५२०

७ मा. ३. १९.२-५—"सचिव बोलि बोले खरदूषन । यह कोउ नृप बालक नरभूषन ।।
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा । बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ।।"
बि. सा., पृ. ५२६—'प्रभु छबि देखि चकित सब भयऊ । खरदूषण मंत्री ते कह्यऊ ।।
ये कोउ नृप बालक अहैं, नरवर रूप निधान ।
अस शोभा भरि जन्म हम, देखी सुनी न कान ।।
यद्यपि किहिन कुकर्म, तदपि न मारण योग ये ।"

८ मा. ३.२३.२-६
बि. सा., पृ. ५२८—"खरदूषण मोहिं सम बल धामा । तिन्हें को मारै बिनु श्री रामा ।।
जो नृपसुत कोउ आइ तो, हरि लेहौं तिन वाम ।।"

९ मा० ३.२५.२—३.२६
बि० सा०, पृ० ५२८

१० मा० ३.२४.१-५
बि० मा०, पृ० ५२९

११ मा० ३.३०.१८-३.३३.३
बि० सा, पृ० ५३२-३३

१२ मा० ४.७.१-२३; ४.२१.१-६
बि० सा०, पृ० ५३८-३९, ५४४

१३ मा० ४.१०.१-४.१०
बि० सा०, पृ० ५३९-४०

१४ मा० ४.२२.६-४.२३.७
बि० सा०, पृ० ५४५

१५ मा० ४.३०.३-१६
बि० सा०, पृ० ५४७

संवाद,[1] सीता-हनुमान्-संवाद,[2] हनुमान्-राम-संवाद,[3] प्रहस्त,[4] मंदोदरी[5] एवं विभीषण[6] का रावण को समझाना आदि; लंका काण्ड में राम द्वारा शिव-संस्थापन,[7] राम से विरोधन करने का पुनः मन्दोदरी का रावण से अनुरोध,[8] अंगद- रावण-संवाद,[9] कुम्भकर्ण का रावण को उपदेश,[10] रावण वध पर मंदोदरी का विलाप[11] आदि; उत्तरकाण्ड में भरत-विरह तथा भरत-हनुमान-मिलन,[12] राम-राज्याभिषेक,[13] वेद-

१ मा० ५.५.८-५.८.१
बि० सा०, पृ० ५४६-५०

२ मा० ५.१३; ५.१६.१-५.१७
बि० सा०, पृ० ५५३-५५४

३ मा० ५.३२.५-७; ५-३३.६-६
बि० सा०, पृ० ५६५—''..............................
प्रति उपकार योग्य मैं नाहीं। त्यहिते हौं ऋणियाँ तुम पाहीं ॥
सुनि हनुमान सकुचि अस भाखा। तब प्रताप मैं का मृग शाखा ॥'

४ मा० ६.८; ६.६.१०-६.६
बि० सा० पृ० ५६७

५ मा० ५.३६.४-५.३७.६
बि. सा०, पृ० ५६७-६८

६ मा. ५.३८.२-५.४१.६ (पू.)
बि. सा. पृ० ५६८

७ मा० ६.२.३—६.३.४
बि० सा०, पृ० ५७४

८ मा० ६.६.२—६.७
बि० सा०, पृ० ५७६

६ मा० ६.२०.१—६.३५.५
बि० सा०, पृ० ५७८-५८४

१० मा० ६.६२-६.६३.५
बि० सा०, पृ० ५६३
त्रिभुवन पति सों बैर बढ़ाई। पुनि सुख चहत कहा अब भाई ॥
ताते त्यागि कुटिलपन येहू। जगदम्बा लै रामहिं देहू ॥

११ मा० ६.१०४.१-६.१०४
बि० सा०, पृ० ६०७—
सोइ बपु बाहु श्वान शिव खाहीं। राम विमुख कछु अचरज नाहीं ॥
जासु कर्मफल चाहिय शोका। तदपि कृपालु दीन निज लोका ॥"

१२ मा० ७.१.१-७.२.१४
बि० सा, पृ० ६११—"रहा एक दिन अवधिकर, भरत समुझि मन माहिं।
× × ×
ताते ऋणियों आपकर, हों मैं उऋण न लेहु ॥"

१३ मा० ७.१२.१-१६—
प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।..............
बि० सा०, पृ० ६१४-१५—''
प्रथम श्री रघुनाथ शिर कीन्हों तिलक वशिष्ठ।

स्तुति,[1] शिव-स्तुति,[2] राम-राज्य-वर्णन[3] इत्यादि के भक्ति परक स्थल "मानस" की भक्ति से अक्षरसः प्रभावित हैं।

अपने ग्रन्थ को समाप्त करते हुए बाबा रघुनाथदास ने चारों युगों में रामभक्ति के प्रबल प्रताप का उद्घोष किया है[4] और भक्त से उद्धार पाने वाले महापुरुषों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है।[5] इसी क्रम में उन्होंने आह्लाद के साथ तुलसी का भी नामोल्लेख किया है।[6] ग्रन्थकार ने स्वयं भी भक्ति एवं सत्संग की प्राप्ति की अपनी उद्दाम आकांक्षा व्यक्त की है।[7] तुलसी की तरह ही इन्होंने भी भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम पर काफी बल दिया है।[8] कहीं-कहीं तो इन्होंने अपने ग्रन्थ में तुलसी के मानस की पूरी पंक्ति को ही उसी रूप में या थोड़ा हेर-फेर करके ग्रहण कर लिया है। जैसे—

(क) देत पाँवड़े अरघु सुहाए। सादर जनकु मन्डपहिं ल्याए।

—मा० १.३२०.८

देत पाँवड़े अर्घ्य सुहाये। सादर जनक मंडपै ल्याये।।

—बि० सा०, पृ० ४६१

(ख) सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी।

—मा० १.२४७.१

सिय सोभा नहिं जाय बखानी। जगदम्बिका रूप गुण खानी।।

—बि० सा०, पृ० ४१६

(ग) थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी।।

—मा० २.४२.६

अति लघु बात पितें दुख भारी। अपर हेतु कछु है महतारी।

—बि० सा०, पृ० ४८०

---

१ मा० ७.१२(ख)-७.१३-२४
बि० सा०, पृ० ६१५

२ मा० ७.१३ (ख)—७.१४ (क)
बि० सा०, पृ० ६१५

३ मा० ७.२०.७-७.२३
बि० सा०, पृ० ६२०—"राम राज्य बैठे जब तेरो। ....
....
.... । सब कैं प्रभुपद प्रीति अपारी।

४ बि० सा०, पृ० ६२१—"चारों युग में प्रबल है, रघुपति भक्ति प्रताप।।"

५ वही, पृ० ६२२-२३

६ वही, पृ० ६२३—"चतुरोग तुलसीदास पावन रामयश जिन उर धरेउ।।"
....

७ वही, पृ० ६२३—"जहँ राखौ प्रभु मोहि तहाँ निज पद रति दीजै।।
दीजै पुनि सतसंग जहँ तब गुण सुनि वाको लहौं।।"
....

८ (क) वही, पृ० ४२१—"तव सम ईस न ईश कोई, तव पुर ससि न ग्राम।
तव चरितन सम चरित नहिं तव जु नाम सम नाम।।"
(ख) वही, पृ० ४२२—"नाम रूप अरु लीला धामा। रहत नित्य ये होत न खामा।"

(घ) यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं । सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं ।।

—मा० २.२१७.३

यहि बड़ि बात भरत कै नाहीं । जिन्हें राम सुमिरत मन माहीं ।।

—बि० सा०, पृ० ५०४

इसी तरह मानस की बहुत सी अर्द्धालियाँ भी बिश्राम-सागर में प्रयुक्त हुई हैं—

(क) त्याहि अवसर सीता तहाँ, आई···· ···· ····[1]

—बि० सा०, पृ० ४३८

(ख) रंग भूमि आये दोउ भाई ।[2]

—बि० सा०, पृ० ४४१

(ग) भूप पहुनई करन पठाई ।[3]

—बि० सा०, पृ० ४५९

(घ) आवत देखि बरातिन सीता ।[4]

—बि० सा, पृ० ४६१

(ङ) नृप करि विनय महाजन फेरे ।[5]

—बि० सा०, पृ० ४७०

(च) प्रभु जननो बहुविधि समुझाई ।[6]

—बि० सा०, पृ० ४८४

(छ) तासु तेज प्रभु बदन समाना ।[7]

—बि० सा०, पृ० ६०७

मानस की शब्दावलियों एवं भावों का ग्रहण तो इस ग्रन्थ की पंक्ति-पंक्ति पर किया गया है । इस कथन के स्पष्टीकरण के लिए दोनों ग्रन्थों की कतिपय समानान्तर पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

(क) जौं बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ।।

—मा० १.८.९

जिमि बालक बोलत तुतराई । सुनत मातु पितु अति हरषाई ।।

—बि० सा०. पृ० ५

(ख) सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू । लोक लाहु परलोक निबाहू ।।

—मा० १.२०.२

परम सरल सुमिरत सुखदाई । लोकानन्द परलोक भलाई ।

—बि० सा०, पृ० ९

१ मा० १.२२८.२ (पू०)
२ मा० १.२४०.५ (पू०)
३ मा० १.३०६.८ (उ०)
४ मा० १.३२३.२ (पू०)
५ मा० १.३४०.१ (पू०)
६ मा० १.२०२.८ (पू०)
७ मा० ६.७१.८ (पू०)

(ग) गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई । जों बिरंचि संकर सम होई ॥

—मा० ७.९३.५

ब्रह्मा विष्णु महेश ते, जो अधिकी ह्वै जाय ।
गुर बिन भव निधि ना तरे, कहत निगम अस गाय ॥

—बि० सा०, पृ० १७

(घ) बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी । गहगहि गगन दुंदुभी बाजी ॥

—मा० १.१९१.७

देव दुंदुभी देइं सुमन बरसावहीं ।

—बि० सा०, पृ० ४०३

(ङ) यह सुभ चरित जान पै सोई । कृपा राम कै जापर होई ॥

—मा० १.१९६.६

यह सब चरित जाय तब जाना । जब उर बसैं आय भगवाना ॥

—बि० सा०, पृ० ४०५

(च) जगत पिता मैं सुत करि जाना ।

—मा० १.२०२.७ (उ०)

जगत पिता तुम अज भगवाना । मैं बिन ज्ञान पुत्र करि माना ॥

—बि० सा०, पृ० ४०९

(छ) समय जानि गुर आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥

—मा० १.२२७.२

समय पाय आयसु चले, सुमन लेन दोउ भ्रात ॥

—बि० सा० पृ० ४३८

(ज) स्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥

—मा० १.२२९.२

रूप अनूप सकौं किमि भाखी । नैन अबैन बैन बिन आँखी ॥

—बि० सा०, पृ० ४३८

(झ) जिन्ह के रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

—मा० १.२४१.४

एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ । तेहिं तस देखेउ कोसल राऊ ॥

—मा० १.२४२.८

जिन जेहि भाँति भावना आनी । तिन तस देखे शारंग पानी ॥

—बि० सा०, पृ० ४४२

(ञ) सिख हमारि सुनि परम पुनीता । जगदम्बा जानहु जियं सीता ॥
जगत पिता रघुपतिहि बिचारी । **भरिलोचन छवि लेहु निहारी ॥**

—मा० १.२४६. २–३

जगत पिता रघुपति कहँ जानौ । जगजननी जानकिहि पिछानौ ॥
त्यहिते दुर्वासना नेवारी । **भरि लोचन छवि लेहु निहारी ॥**

—बि० सा०, पृ० ४४३

(ट) सखीं कहहिं प्रभु पद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥
गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहँसे रघुबंस मनि प्रीति अलौकिक जानि॥

—मा० १.२६५.८–१.२६५

सखिन कह्यो पति पद गहु बाला। छुवत न मुनि गुनि तिय करि हाला॥
....

प्रीति अलौकिक समुझि कै, **मन बिहँसे** रघुनाथ॥

—बि० सा०, पृ० ४४६

(ठ) **हृदयं न हरषु विषादु कछु बोले श्री रघुबीरु॥**

—मा० २.२७० (उ०)

हृदय न हर्ष विषाद कछु बोले श्रीरघुनाथ तब॥

—बि० सा०, पृ० ४४८

(ड) बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा॥ जानि **ईस सम भाउ न दूजा॥**

—मा० १.३२१.१

सहित बरात दशरथे पूजा। मानि **ईश सम भाव न दूजा॥**

—बि० सा०, पृ० ४६१

(ढ) जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
....
....

ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु जय जय सब कहें॥

—मा० १.३२४. ११-१६

जे पद बसत महेश उर, ध्यावत मुनि जन ढेर।
ते पद पद्म पखारहीं, धन्य भाग्य नृप केर॥

—बि० सा०, पृ० ४६२

(ण) सुन्दरी सुन्दर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥

—मा० १ ३२५. २५-२६

सबर सुन्दरी राजहिं कैसे। जिय युत बिभुन अवस्था जैसे।

—बि० सा०, पृ० ४६२

(त) एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भायं सुनि रहहीं॥
कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। **रामु भरत कहुँ प्राण** पिआरे॥

—मा० २.४८. ६-८

कोउ कह भरतहु कर मत होई। सुनि कर कान राखि कह कोई।
लागत अघ अस किए बखाना। **राम भरत कहँ प्राण** समाना॥

—बि० सा०, पृ० ४८५

(थ) तेहि अवसर एक ताप सुआवा । तेज पुंज लघुबयस सुहावा ।।

—मा० २.११०.७

तेहि अवसर तापस इक आवा । करि बिनती हरिधाम सिधावा ।।

—बि० सा०, पृ० ४९०

(द) जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ ।।
भव मगु अगमु अनन्दु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ ।।
अजहुं जासु उर सपनेहुँ काऊ । बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ ।।
राम धाम पथ पाइहि सोई । जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई ।।

—मा० २.१२३–२.१२४.२

जिन सिय राम बटोही हेरे । भव दुख दूरि भये तिन केरे ।।
अजहुं जासु उर वह छवि आवै । निश्चय सो पर धाम सिधावै ।।

—बि० सा०, पृ० ४९१

(ध) हानि लाभु जीवनु मरनु, जसु अपजसु विधि हाथ ।।

—मा० २.१७१ (उ०)

हानि लाभ जीवन मरण, दुख सुख सबके साथ ।।

—बि० सा०, पृ० ४९४

(न) गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं । करि प्रनामु रथत्यागेउ तबहीं ।।
राम दरस लालसा उछाहू । पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू ।।
मन तहँ जहँ रघुवर बैदेही । बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही ।।

—मा० २.२७५.२-४

गिरिवर देखि जनक रथ त्यागा । कीन्ह प्रणाम सहित अनुरागा ।।
मग श्रम स्वल्पन काहू पावा । मनु प्रभु पास प्रथमही आवा ।।

—बि० सा०, पृ० ५०६

(प) सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं । देखि दसा मुनिराज लजाहीं ।।

—मा० २.३२६.४

नेम प्रेम लखि भरत कर, मुनिजन मन सकुचात ।।

—बि० सा०, पृ० ५१४

(फ) सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि ।।

—मा० २.३२३ (उ०)

सिंहासन प्रभु पादुका, बैठारी अनुरागि ।।

—बि० सा०, पृ० ५१४

(ब) अवध राजु सुरराजु सिहाई । दशरथ धनु सुनि धनदु लजाई ।
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक चंपक जिमि बागा ।।

—मा० २.३२४.६-७

सुनि अवध सुख सुर राज लाजत धनद धन लखि रागही ।
त्यहि त्यागि दीन्हयो भरत किमि जिमि मधुप चंपक बागही ।।

—बि० सा०. पृ० ५१५

(भ) सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा ।।
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ।।

—मा० ३.७.४-५

प्रभुहि चलत लखि गिरि मग देहीं। घन सुछाँह महि मृदु ह्वै लेहीं ।।

—बि० सा०, पृ० ५१६

(म) दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपा निधाना ।।

—मा० ३.३१.४

रहे प्राग तब दरशन होता। चलन चहत अब कृपा निकेता ।।

—बि० सा० पृ० ५३२

(य) बालि परमहित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा।

—मा० ४.७.१६

बालि हमार परमहितकारी। मिले आइज्यहि आपु ऊधारी ।।

—बि० सा०, पृ० ३५६

(र) प्रभु अजहूँ मैं पापी अन्तकाल गति तोरि।

—मा० ४.६ (उ०)

प्रभु अजहूँ अघ बने हमारे। अन्त काल भे दरश तुम्हारे ।।

—बि० सा०, पृ० ५३६

(ल) समाचार पुरवासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए ।।
....

एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई ।।

—मा० ७.३.४, ८

जहँ तहँ सुनि पुर नारि नर, धाये दरशन हेत।
एक एकते कहहिं तुम, देखे कृपानिकेत ।।

—बि० सा०, पृ० ६१२

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि विश्राम-सागर पर मानस की भक्ति का ही नहीं प्रत्युत पंक्ति-पंक्ति का प्रभाव है।

६. "उभय प्रबोधक रामायण"

"उभय प्रबोधक रामायण" के रचयिता महात्मा बनादास जी हैं। यों तो इन्होंने बहुत से ग्रन्थों की रचनाएँ की थीं[1] परन्तु उनमें "उभय प्रबोधक रामायण" ही सर्वाधिक प्रसिद्ध है। डा० भगवतीप्रसाद सिंह के शब्दों में "महात्मा बनादास का जन्म गोंडा जिले के अशोकपुर नामक गाँव में पौष शुक्ल ४, सं० १८७८ (१८२१ ई०) में हुआ था।"[2] परन्तु डा० रामकुमार वर्मा ने "इनका आविर्भाव काल सम्वत् १८६०"[3] माना है। "उभय प्रबोधक

---

१ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, डा० भगवतीप्रसाद सिंह, पृ० ४८४-४८५
२ वहीं, पृ० ४८१
३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५५०

रामायण'' का रचना-काल संवत् १९३१ अगहन शुक्ल पंचमी है।[१] गोस्वामी तुलसीदासजी की तरह महात्मा बनादास भी यथार्थतः दास्यभाव के ही उपासक थे। ऐसे रसिक-परम्परा के साहित्य पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने वाले विद्वानों ने उनकी ''मधुरा भक्ति'' एवं रसिकोपासना की भी चर्चा की है।[२] उभय प्रबोधक रामायण से यह स्पष्ट है कि शैशवावस्था से ही बनादास की प्रवृत्ति आध्यात्मिक साधना की ओर उन्मुख हो चली थी और उन्होंने पुनर्जन्म न लेने का निश्चय कर लिया था।[३] तुलसी के ''मानस'' का इस ग्रन्थ की पंक्ति-पंक्ति पर प्रभाव पड़ा है। जिस तरह तुलसी ने मानस के सात काण्ड रखे हैं, उसी तरह इन्होंने भी अपने ग्रन्थ में सात खण्ड रखे हैं।[४] वे सात खण्ड निम्नांकित हैं—

गुरु खण्ड, नाम खण्ड, अयोध्या खंड, विपिन खंड, विहार खंड, ज्ञान खंड और शान्ति खंड।[५]

''प्रथम गुरु खंड'' के पूर्व एक 'प्रथम मूल खंड' भी है जिसमें कवि ने संक्षेप में सम्पूर्ण राम-कथा का सारगर्भित वर्णन प्रस्तुत कर दिया है। इसमें रावण के घोर अत्याचार से त्रस्त पृथ्वी एवं देवताओं का ब्रह्मा के पास जाकर अपनी व्यथा सुनाने का वर्णन ठीक मानस जैसा ही है।[६] भगवान् के निवास-स्थान के संबंध में देवताओं एवं शिव के जो यहाँ कथन हैं, वे मानस से सर्वथा प्रभावित हैं।[७] राम के सौन्दर्य एवं महिमा वर्णन के क्रम में उभय

---

१ उ० प्र० रा०, पृ० ६३, पं० सं० ३६

२ (क) रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र ''माधव'' —पृ० २८७

(ख) रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—डा० भगवतीप्रसाद सिंह, पृ० ४८४

३ उ० प्र० रा०, पृ० ४९८, २९ पू०—

बाढ़ी श्रद्धा हिये बालपन ते अति भारी।।
यहि तन नाघौं जक्त फिरौं नहिं अबकी पारी।।
बिघन विपति जो परै सहौ सो सुठि हरषाई।
याही दृढ़ संकल्प जाहि ते फिरि नहिं आई।।

४ उभय प्रबोधक रामायण है नाम जाको सात खंड सात छंद सारो जग हित है।
—उ० प्र० रा०, पृ० ६३, प० सं० ३६ की अंतिम पंक्ति

५ वहीं, प० सं० ३७

६ उ० प्र० रा, पृ१, दंडक-२,
मा० १.१८३.१-१.१८४

७ (क) पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई।।
—मा० १.१८५.२

कोउ बैकुंठ गोलोक कोउ क्षीर निधि भाव निज २ सकल सुर बतावैं।।
—उ० प्र० रा०, पृ० १, दंडक २

(ख) तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ।।
हरि व्यापक सर्वत्र समाना। —मा० १ १८५.४-५ (पू०)
शम्भुत्यहि समय बीचारि उर वहत भे ब्रह्म व्यापक सकल लोक माहीं।
—उ० प्र० रा, वहीं

प्रबोधककार ने मानस के ही विशेषणों एवं शब्दावलियों का प्रयोग किया है ।[१] तुलसी की तरह वे भी भगवान् के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों की चर्चा करते हैं ।[२] अपने आश्रम में भगवान् राम के पदार्पण पर मानस में भरद्वाज मुनि का कथन है—

''आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग बिरागू ॥
सफल सकल सुभ साधन साजू । राम तुम्हहि अवलोकत आजू ॥''[३]

यहाँ भी वे वही बात कहते हैं—

''योग तप यज्ञ व्रत भजन वैराग्य तप सकल साधन भये सिद्धि आजू ।''[४]

इसी तरह वन-मार्ग में राम के पीछे चलती हुई सीता एवं लक्ष्मण का बनादास ने भी तुलसी की तरह वर्णन किया है ।[५] भरत की भायप-भक्ति[६] एवं सुतीक्ष्ण की प्रेम विह्वलता[७] के वर्णन में भी उनपर मानस का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । वस्तुतः बनादास की दृष्टि में तपोमय जीवन यापन करने वाले आदर्श भक्तों में भरत का ही अग्रण्य स्थान है । वे ही उनकी तपस्या के आदर्श थे । उनका अखंड विश्वास था कि भगवान् के वियोग में भरत की तरह कठोर तपस्वी का जीवन यापन करते हुए शरीर तपाने से, आज भी भगवान् प्राप्त किये जा सकते हैं । मानसकार के स्वर में स्वर मिलकर उनका भी यही कथन है—

---

१ (क) मा० १.१६६.१-११
उ० प्र० रा०, पृ०२, पं० १५-२५; पृ० ३, प० सं० ४, पं० १७; पृ० ६, पं० १५-१८; पृ० १६ की अंतिम दो पंक्तियाँ; पृ० १७, पं० १-१३
(ख) मा० १.२२०.४-८
उ० प्र० रा०, पृ० ११४, प० सं० ४२

२ उ० प्र० रा, पृ० १७, पं० १५-१७

३ मा० २.१०७.५-६

४ उ० प्र० रा०, पृ० ६, छप्पै ७

५ प्रभु पद रेख बीच बिच सीता । धरति चरन मग चलति सभीता ॥
सीय राम पद अंक बराएँ । लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ ॥
—मा० २.१२३.५-६

राम कंज पद रेख जानकी चलत बचाये ॥
लषण दक्ष मग देत सिया रघुबर पद रेखा ।
—उ० प्र० रा०, पृ० ६, पं० २०-२१

६ मा० २.१७४.२; २.१७५.४; २.१७६.१-६; २.१८३.१-२
उ० प्र० रा०, पृ० ७, पं० ३-५
(ख) मा० २.२०२.१
उ० प्र० रा०, पृ ७, पं० १४-१५
(ग) मा० २.२४०.२; २.२४०-८
उ० प्र० रा०, पृ० ७, पं० १६-१८
(घ) मा० ७.१ (ख) ; ७.१.८
उ० प्र० रा०, पृ० १२, पं०३-६

७ मा० ३.१०.३२.१
उ० प्र० रा०, पृ० ८, पं० ४-११

चौदह वर्ष को राम गये बन भूप तजे तन जान जहाना ।
अवध निवासी सहे सब संकट कै तप औ ब्रत साधन नाना ।।
लक्ष्मण औ सिय संग दिये भय भस्म घरै महँ भर्त सुजाना ।
दासबना सनबन्ध जो राम से तो किन लोजिए पंथ पुराना ।।[१]

यथार्थतः यहाँ "भय भस्म घरै महँ भर्त सुजाना" में

"लखन राम सिय कानन बसहीं । भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ।।
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू । सब बिधि भरत सराहन जोगू ।।"[२]

की ही प्रांजल प्रतिध्वनि है ।

तुलसी की तरह ही बनादास ने भी राम एवं सीता को समस्त संसार का पिता एवं माता घोषित किया है तथा अग्नि-परीक्षा में छाया-सीता के ही जलने का उल्लेख किया किया है ।[३] राम के भिन्न-भिन्न अवतार[४] तथा सीता के अपरिमित सौन्दर्य एवं शक्ति है । के सम्बन्ध में[५] भी तुलसी की मान्यता से बनादास की मान्यता सर्वथा मिलती-जुलती है ।

अपने ग्रन्थ के "प्रथम गुरु खण्ड" में महात्मा बनादास ने गोस्वामी तुलसीदासजी के महत्व का जोरदार शब्दों में प्रतिपादन करते हुए उनके प्रति अपनी प्रगाढ़ भक्ति प्रदर्शित की है ।[६] उन्होंने स्पष्ट शब्दों में तुलसी को अपना गुरु स्वीकार किया है[७] और भगवान की साक्षी लेकर अपनी कृति को उनकी कृपा का प्रसाद बतलाया है ।[८] तुलसी के ग्रन्थों का नामोल्लेख करते हुए बनादास ने उन्हें कवि सम्राट घोषित किया है[९] और अन्यान्य शस्त्रों एवं ग्रन्थों को छोड़कर उन्हीं की रचनाओं के अमृत रस के आस्वादन का परामर्श दिया है ।[१०] इस घोर कलिकाल में उनकी दृष्टि में तुलसीकृत मानस ही साधु-संतों के जीवन का

---

१ उ० प्र० रा०, पृ० १४, सवैया ४६
२ मा० २.३२६. २-३
३ मा० ६.१०६.११; १.२४६. २-३
उ० प्र० रा०, पृ० ११, छन्द ३२, पं० १-२—
"जरी विश्वमन मौलि जरयो माया प्रतिविम्वा ।
राम सकल के पिता जानकी सब जग अम्वा ।।
४ मा० ६.११०; ७-८
उ० प्र० रा०, पृ० ४१७, पं० सं० ८०
५ मा० ३ २२.९; १. श्लो० ५; १.१४८. २-४
उ० प्र० रा०, पृ० ५२, प० सं० ७६
६ उ० प्र० रा०, प्रथम गुरु खण्ड, प० सं० १-९; ११-१५; १६-२०; २१-२४; २७-२८; ३५:३७; ४०-४१; ४४, ४५, ४८, ५२-५५; ५९, ६१, ६३, ६६, ७१-७२; ७७, ७९, ८१, ८२, ८४, ८८, ८६, ८९, ९१, ९८, १००, १०२, १०४, १०६, १०७।
७ उ० प्र० रा०, पृ० २१, प० सं० ९ की अन्तिम पंक्ति
पृ० २५, प० सं० ३२ की तीसरी पंक्ति
८ वही, पृ० २०, प० सं० ३ की अन्तिम पंक्ति
९ वही, पृ० २६, प० सं० ३४
१० वही, पृ० २७, प० सं० ३९

सर्वस्व है।[1] इनकी प्रभूत प्रशंसा करते हुए "ऐसे सद्ग्रन्थ" में "प्रीति" "प्रतीति" नहीं रखने वालों की उन्होंने तीव्र भर्त्सना की है।[2] गोस्वामी जी की महिमा का दिग्दर्शन कराते हुए बनादास ने यहाँ तक कह दिया है कि "जो अवतार न होत गुसांई को को जग जानतो राम बेचारे।"[3]

अपने ग्रन्थ के "द्वितीय नाम खण्ड" में मानसकार की तरह इन्होंने भी भगवान राम के नाम की अपार महिमा घोषित की है।[4] वस्तुतः बनादास का यह नाम-महिमा-वर्णन मानस के बालकाण्ड में वर्णित नाम-वन्दना-प्रकरण[5] से अक्षरशः प्रभावित है। तुलसी का कथन है—

(क) "अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥"[6]

(ख) "अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नाम दुहूतें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥"[7]

बनादास भी कहते हैं—

(क) "अगुण सगुण दोउ रुपन को बोध करै एक राम नाम नहिं दूसरे को कामजू।
अगम अनादि दोऊ अकथ अनूप अति मति न सकति कहि महासुख धाम जू॥[8]

(ख) "निरगुण सरगुण ब्रह्म स्वरूप अगाध अनूप करै को बखाना॥
....
नाम अधीन उभय तिहुँ काल में पूरण प्रेम हृदय ठहराना॥"[9]

महान से महान होकर भी राम नाम में लव नहीं लगाने वालों की बनादास ने बड़ी भर्त्सना की है[10] और बार-बार अपने इस कथन की आवृत्ति की है कि—

दास बना न कछू बनि आय जो राम को नाम नहीं लवलाई॥[11]

---

१ "दारुण काल बेहाल सबै जग बुद्धि भै मंद पढ़े को पुराना।
....
....
दास बना हमरे मत से तुलसीकृत साधु को जीवन प्राना।
—वही, पृ० ३३ प० सं० ७५

२ वही, पृ० २२, प० सं० १३ की अन्तिम दो पंक्तियाँ

३ उ० प्र० रा०, पृ० ३०, प० सं० ५७, पं० २

४ उ० प्र० रा०, नाम खण्ड, प० सं० १-५, ८, ९, १३, १५, १८, २७, २९, ३६-३८ ५०-५६, ६३, ७०, ८९-९१, ९४।

५ मा० १.१९.१—१.२८.१

६ मा० १.२१.८

७ मा० १.२३.१-२

८ उ० प्र० रा०, पृ० ५१, प० संख्या ७०, पं० १, २

९ वही, पृ० ६०, प० सं० १७, पं० १, ३

१० वही, पृ० ५५-५६, प० सं० ९५-१०३

११ वहीं।

तुलसी की तरह इन्होंने भी बार-बार अपनी यह आस्था व्यक्त की है कि इस घोर कलिकाल में संसार सागर को पार करने के लिए भगवान राम के नाम के अतिरिक्त अन्य कोई आधार नहीं है।[1] "नाम खण्ड" के अतिरिक्त अपने ग्रन्थ के अन्यान्य खण्डों में भी स्थल-स्थल पर कवि ने सशक्त शब्दों में नाम की महिमा का गायन किया है[2] और समस्त साधनों एवं आशाओं को गरल के समान परित्याग कर दिवारात्र नाम-स्मरण करने वाले बड़भागी जनों की प्रभूत प्रशंसा की है।[3]

अपने ग्रन्थ के "अयोध्या खण्ड तृतीय" के प्रारम्भ में महात्मा बनादास जी ने तुलसीदास जी की तरह ही विविध देवी-देवताओं, सन्तों, शास्त्रों, राम से सम्बन्धित पुरुषों एवं स्थलों की बार-बार अभिवन्दना करते हुए उनसे रामभक्ति प्रदान करने को करबद्ध प्रार्थना की है।[4] तुलसी के स्वर में स्वर मिलाकर वे आगे कहते हैं—

"रामायण शत कोटि मुनिन बहु विधिहु बखाना ।
महिमा कोटि समुद्र पार कोउ लहत न जाना ।।
निज निज मति अनुहारि भाव भक्ती के गाये ।
वचन बुद्धि मन शुद्ध हेत सरधा अधिकाये ।।
जिमि पिपीलिका सिन्धु को करत मनोरथ पार हित ।
कह बनादास तिमि मोरि गति लागो भाँति अनेक चित ।।"[5]

इस पद्य में वर्णित "शत कोटि" रामायण को तुलसी भी स्वीकार करते हैं[6] और बनादास भी। तुलसी ने भी रामचरित की महिमा को अपार समुद्र कहा है[7] और बनादास भी वही कहते हैं। मुनि गण ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भक्तिभाव से पूर्ण रामायण रची,

---

१ उ० प्र० रा० पृ० ४०, प० सं० की प्रारम्भिक दो पंक्तियाँ
पृ० ४१, प० सं० १५ की अन्तिम दो पंक्तियाँ
पृ० १८२; प० सं० ६२ की अन्तिम दो पंक्तियाँ
पृ० ५१४, प० सं० २६
पृ० ५२२, प० सं० ७१ की पहली और दूसरी पंक्ति—
"सकलौ साधन शून्य है काहू में नहिं सार ।
ताते कलियुग में रहेउ एक नाम आधार ।।"

२ वही, पृ० १५, प० सं० ५०, पं० १, पृ० १६, पं० २, पृ० २४, पं० सं० २६ की अन्तिम पंक्ति, पृ० २५, प० सं० ३२, पं० १; पृ० ४८२, प० सं० ३०, पं० १, प० सं० ३२-३४, पृ० ४८६, प० सं० ५०, पृ० ५०६, प० सं० ६३-६६; पृ० ५२७, प० सं० १०२ के प्रारम्भ और अन्त की पंक्ति ।

३ वही, पृ० १८, पं० ४-६

४ मा० १.१५.१—१.१८.६
उ० प्र० रा०, पृ० ५७-५६, प० सं० १-१०

५ उ० प्र० रा०, पृ० ६३-६४, प० सं० ४०

६ मा० १.३३.६ (ऊ); ७.५२.२ (पू०)

७ मा० १.३६१.१०

यह बात दोनों कवियों को मान्य है।[1] वचन बुद्धि मन शुद्ध हेत'' एवं ''निज गिरा पावनि करन कारन''[2] में कोई विशेष अन्तर नहीं है। ''जिमि पिपीलिका सिन्धु को करत मनोरथ पार हित'' और ''जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महामंद मति पावन चाहा।''[3] में प्रकरण भिन्न होने पर भी अर्थ की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। ठीक इसी तरह विश्वामित्र का राजा दशरथ से राम-लक्ष्मण की याचना,[4] राम-लक्ष्मण सहित उनका मिथिला गमन,[5] राम-लक्ष्मण को देखकर जनक की प्रेम-मुग्धता,[6] राम-लक्ष्मण के द्वारा विश्वामित्र की सेवा,[7] पुष्पवाटिका प्रसंग,[8] वनगमन प्रकरण में केवट का प्रेम[9], भरत को वन आते देख लक्ष्मण की उग्रता,[10] चित्रकूट की सभा और उसमें राम-भरत संवाद[11] आदि प्रसंगों के जो महात्मा बनादास जी ने वर्णन किये हैं, उन पर रामचरितमानस का स्पष्टतः प्रभाव परिलक्षित होता है। इन स्थलों में कहीं-कहीं तो मानस की शब्दावली का भी प्रचुर परिमाण में प्रयोग किया गया है और यत्र-तत्र थोड़ा परिवर्तन करके वहाँ की शब्दावली ग्रहण की गयी है।

तुलसी की तरह ही बनादास ने भी राम और शिव की एकता प्रतिपादित की है। तथा रामभक्त का लक्षण शिव के चरणों में निश्छल प्रेम बतलाया है।[12] वस्तुतः शिव के इष्ट देव राम ही हैं और शिव से बढ़कर राम को प्रिय कोई नहीं है, मानस में निरूपित इस तथ्य की आवृत्ति बनादास जी ने भी की है।[13] तुलसी की शब्दावली में ''गणिका

---

१ मा० १ १३.१०

२ मा० १ ३६१.६

३ मा० ३.१.६

४ मा० १.२०७.६; १.२०८. २-५
उ० प्र० रा०, पृ० १०७, प० सं० १००, पं० १, ४ तथा सवैया २

५ मा० १-२१२. १-४
उ० प्र० रा०, पृ० ११०-११, प० सं० २३

६ मा० १.२१६. १-५
उ० प्र० रा०, पृ० १११, प० सं० २६-२८

७ मा० १.२२६. १-८
उ० प्र० रा०, पृ० ११५, प० सं० ५१-५२

८ मा० १.२२१. २-६; १.२२२.१, १.२२३. ७
उ० प्र० रा०, पृ० ११४, प० सं० ४३-४४

९ मा० २.१००.३–२ १००
उ० प्र० रा०, पृ० २११, प० सं० ७८-७९

१० मा० २.२२७.६--२.२३१
उ० प्र० रा०, पृ० २४२-४३, प० सं० ७३-८३

११ मा० २.२६०.२–२.३०६
उ० प्र० रा०, पृ० २५१-५४, प० सं० ३१-५३

१२ मा० १.१०४.६
उ० प्र० रा०, पृ० ८२, प० सं० ५९, पं० १, २

१३ मा० १.५१.८ (पू०); ६.२.६ (पू०)
उ० प्र० रा०, पृ० ८२, पं० सं० ६०, पृ० ४४८, प० सं० ७७, पं० ३-४
''नित गंगा स्नान करहिं शंकर की पूजा।
बार बार प्रभु कहे नहीं प्रिय शिव सम दूजा।।''

अजामिल ब्याध गीध'' आदि के उद्धार के पौराणिक उदाहरण उपस्थित कर बनादास ने भी लोगों को राम-भक्ति की प्रबल-प्रेरणा प्रदान की है।[1] अपने ग्रन्थ में सन्त, गुरु एवं राम इन तीनों की महत्ता का बार-बार प्रतिपादन करते हुए[2] तुलसी की तरह ही उन्होंने सत्संग एवं सत्संगति की अपार महिमा घोषित की है।[3] अपने आराध्य की जन्मभूमि से उन्हें इतना प्रगाढ़-प्रेम है कि दुःख-सुख को समान भाव से सहते हुए वे इस शरीर से अहर्निश अयोध्या में ही निवास करना चाहते हैं।[4]

यों तो "उभय प्रबोधक रामायण" के शेष खण्डों की कथा प्रायः रामचरितमानस की कथा से काफी साम्य रखती हैं परन्तु विहार खन्ड में वन से लौटने के उपरान्त भगवान राम एक बार और जनकपुर जाते हैं और वहाँ से लौटते समय काशिराज के अतिथि बनते हैं।[5] बनादास जी ने काशिराज के द्वारा किये गये भगवान राम के आतिथ्य-सत्कार का बड़ा ही सुन्दर चित्रांकन किया है। वस्तुतः यह महात्मा बनादास जी की सर्वथा-मौलिक उद्भावना है। इस तरह उन्होंने प्रकारान्तर से गोस्वामी तुलसीदास जी के "हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता",[6] "रामचरित सत कोटि अपारा"[7] आदि[8] सिद्धान्तों को ही स्वीकृत किया है। तुलसी की तरह बनादास ने भी "नाम रूपलीला धाम"[9] ज्ञान, वैराग्य, भक्ति एवं पवित्र जीवन की मर्यादाओं पर काफी बल दिया है और ज्ञान, वैराग्य के आधार पर ही भक्ति की स्थापना की है। "उभय प्रबोधक रामायण" की पंक्तियों से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि तुलसी की तरह ये भी एक पहुँचे हुए महात्मा थे। इनका साधक भी एकमात्र दशरथ कुमार भगवान राम के आश्रय का ही अनन्य आकाँक्षी है। उसे उसी का बल है। यही कारण है कि वह स्पष्ट शब्दों में निर्घोष करता है—

"बसे अयोध्या धाम कहीं नहिं आना जाना।
एक राम की आश और नहिं जान जहाना॥"[10]

उभय प्रबोधक रामायण पर मानस की भक्ति के प्रभाव को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिये मानस की शब्दावलियों, पंक्तियों एवं भावों का अनुकरण करने वाली अथवा उनसे साम्य रखने वाली इस ग्रन्थ की कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जा रही हैं—

---

१ मा० ७.१३०.६-१२
उ० प्र० रा०, पृ० १८, प० सं० ६४
२ उ० प्र० रा०, पृ० ५५३, प० सं० ४५, पं० १, २; पृ० ५५५, प० सं० ५०, प्रारम्भ एवं अन्त की पंक्ति
३ वही, पृ० ५५४, प० सं० ५१, प्रारम्भ एवं अन्त की पंक्ति।
पृ० ५५५, प० सं० ५५, पं० १, २
,, ,, ५६
४ उ० प्र० रा०, पृ० १६, पं० ८-९; पृ० ५०९, प० सं० ९७, पं० १
५ वही, पृ० ४४८, प० सं० ७५-७७
६ मा० १.१४०.६ (पू०)
७ मा० ७.५२.२ (पू०)
८ मा० १.३३.५,६
९ उ० प्र० रा०, अयोध्या खण्ड, पृ० १८१-८२, प० सं० ६१
१० वही, पृ० ५०९, प० सं० ९७, पं० १, २

(क) बन्दउँ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर-रूप हरि।

—मा० १ सो० ५ (पू०)

बन्दौं गुरु पद कंज चरण रघुपति जल जाता।

—उ० प्र० रा०, पृ० १, प० सं० १

(ख) जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥

—मा० २.१२३.३ (पू०)

कैधों रति औकाम सहित मधु लघु उपमाये।

—उ० प्र० रा०, पृ० ६, प० सं० १०

(ग) चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति।

—मा० २.१३८ (पू०)

चित्रकूट के विहग मृग बेलि विटप कृतकृत भये।

—उ० प्र० रा०, पृ० ६, प० सं० १०

(घ) असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥

—मा० ७.७३.१

नाना लीला विशद करत जन आनन्द हेता।
दनुज बिमोहन हार साधु उर समुझि सचेता॥

—उ० प्र० रा०, पृ० ११, प० सं० २

(ङ) सजल नयन तन पुलकि निज इष्ट देउ पहिचानी।

—मा० २.११० (पू०)

सजल नयन तन पुलक कबहुँ मुख बोलि न जाई॥

—उ० प्र० रा० पृ० १५, प० सं० ५०

सजल नयन तन पुलक मगन मन कंठ गदगद कर सम्पुट को किये जू।

—वही, पृ० ८५, प० सं० ८०

(च) एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥

—मा० १.२३.४

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥

—मा० १.११६.३

पावक एक अहै गति दारु और एक प्रत्यक्ष सबै कोउ जाना।

....

....

दास बना हिम वोरा यथा जल या विधि है युग ब्रह्म विधाना॥

—उ० प्र० रा०, पृ० ५१, प० सं० ७१

(छ) जान आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥

—मा० १.१९.५

उलटा नामु जपत जग जाना। बालमीकि भये ब्रह्म समाना॥

—मा० २.१९४.८

नाम जपै उलटे कवि आदि सो ब्रह्म समान प्रमान परी है ।

—उ० प्र० रा०, पृ० ५५, प० सं० ६४

(ज) एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द पर धामा ।।
व्यापक विस्वरूप भगवाना । तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ।।
सो केवल भगतन हित लागी ।

—मा० १,१३.३-५ (पू०)

ब्रह्म सच्चिदानन्द निगम जेहि नेति निरूपा ।
....
....
कह बनादास नर देह धरि भक्त हेत किये बहु चरित ।।

उ० प्र० रा०, पृ० ६२, प० सं० २८

(झ) मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।

—मा० १.२११.९

शाप दीन हितकीन अनुग्रह मैं अति माना ।

—उ० प्र० रा०, पृ० ११० प० सं० २२

(ञ) धाए धाम काम सब त्यागी । मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ।

—मा० १.२२०.२

त्यागि सबै गृह काज चले जनु जन्म के दारिद लूटन सोना ।

—उ० प्र० रा०, पृ० ११३, प० सं० ३८

(ट) तात जनक तनया यह सोई । धनुष जग्य जेहि कारन होई ।

—मा० १,२३१.१

तात जनक तनया सोई होत स्वयम्बर जासु हित ।

— उ० प्र० रा०, पृ० ११८, प० सं० ६९

(ठ) कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें । नाथ साथ धनु हाथ हमारें ।

—मा० २.२२९.८

नाथ साथ धनु हाथ कहाँ तक कोउ रिस मारे ।

—उ० प्र० रा०, पृ० २४२, प० सं० ७३

(ड) भरतु हंस रबिबंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ।

—मा० २.२३२.६

भरत हंस जग जनमि कीन्ह गुण दोष बिभागा ।

—उ० प्र० रा०, पृ० २५५, प० सं० ५६

(ढ) सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाय ।।

—मा० १.२५५ (उ०)

सीता मातु सनेह बश बचन कहे बिलखाइ तब ।

—उ० प्र० रा०, पृ० ४४, प० सं० ५८

(ण) हानि कि जग एहि सम किछु भाई ।
भजिअ न रामहि नर तनु पाई ।।

—मा० ७.११२.८

करे न हरि को भजन हानि याते नहिं भाई।

—उ० प्र० रा०, पृ० ४६२, प० सं० २

(त) एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।

— दोहावली, दो० २७७ (पू०)

एक भरोसा एक बल एक आस विश्वास।

—उ० प्र० रा०, पृ० ५२३, प० सं० ७२ (प्रारम्भ एवं अन्त में)

(थ) सुनि सनेह साने बचन बाची बहुरि नरेस।।

—मा० १.२६० (उ०)

सुनि सनेह साने बचन हृदय हर्ष भव भेद मन।

—उ० प्र० रा०, पृ० ५३१, प० सं० १

इस तरह उपर्युक्त अध्ययन से तुलसी परवर्ती रामभक्ति शाखा की एक उत्कृष्ट कृति बनादास कृत उभय प्रबोधक रामायण पर रामचरितमानस की भक्ति का प्रभाव असंदिग्ध है।

१० "राम स्वयंवर"

"राम स्वयंवर" के रचयिता रीवां नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह के सुपुत्र श्री रघुराज सिंह जी हैं। "इनका जन्म संवत् १८८० में और मृत्यु संवत् १९३६ में हुई।"[1] तुलसी परवर्ती सिद्धहस्त रामभक्त कवियों में महाराज रघुराज सिंह जी का अग्रगण्य स्थान है। वस्तुतः इन्हें अपने परम रामभक्त पिता से उत्तराधिकार के रूप में ही रामभक्ति प्राप्त हुई थी। गोस्वामी तुलसीदास जी की तरह ये भी दास्य निष्ठा के भक्त थे[2] और उन्हीं की तरह इन्होंने भी राम और कृष्ण दोनों अवतारों में अभेद प्रतिपादन करते हुए दोनों की साथ-साथ वन्दना की है।[3] रघुराज सिंह ने "राम स्वयंवर" की रचना संवत् १९३४ में की थी।[4] यों तो इनकी भक्ति विषयक बहुत-सी कृतियाँ हैं[5] पर उनमें "राम स्वयंवर" निर्विवाद

---

१ हिंदी-साहित्य का इतिहास-आचार्य शुक्ल, पृ० ५७८

२ "दास की उपासना है आसना है और कछु जानो मोहि दास यदुनाथ अलवेला को।"

—भक्ति विलास, पृ० १ की अंतिम पंक्ति

३ (क) जय जय जय जदुवंश मणि, यदु नन्दन जगदीश।
जयति जनार्दन जग जनक, जानकीश अज ईश।।

—वहीं, पृ० १

(ख) अवधेश कुमार बड़ो सुकुमार भलो वसुदेव कुमार तथा।
दोउ नाथ दयानिधि जानि प्रयो शरणागत में रघुराज सदा।।

—रघुराज-विलास, भजन १६, पृ० ७०

४ "संवत उनइससै चौंतीशा।
पूरण भयो ग्रन्थ सुख आगर। राम स्वयंवर नाम उजागर।।"

—रा० स्व, पृ० ९७०

५ (क) "ताते भाषा "भागवत" रच्यौ स्वमति अनुसार।
रच्यो 'राज रंजन' बहुरि, सव रस मतन प्रकाश।।"

—रा० स्व०, पृ० ४

(ख) "अनंद अंबुधि ग्रन्थ सुहावन। मो मुख रच्यो पतित के पावन।।
मो रसना ते नाथ ही. निरमे ग्रन्थ रसाल।।"

—रा० स्व०, पृ० ९७१-९७२

(ग) द्रष्टव्य-रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४७२

रूप से रामचरितविषयक सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। यह एक वर्णनात्मक प्रबंधकाव्य है। इसके २३ प्रबंधों में से २२ में केवल बालकाण्ड की राम-कथा का ही वर्णन है। अंतिम प्रबंध में मानस के अयोध्या काण्ड से लेकर उत्तर काण्ड तक की शेष राम-कथा बड़ी शीघ्रता के साथ अत्यंत संक्षेप में कह डाली गयी है। ग्रन्थकार ने भगवान् राम एवं उन भाइयों के विवाहोत्सव का बड़ा ही अतिरंजित एवं हृदयस्पर्शी वर्णन किया है और इसी के अनुरूप ग्रन्थ का नामकरण भी "राम स्वयंवर" रखा है। महाराज रघुराज सिंह को अपने इस ग्रन्थ में राम वन-गमन, सीता-अपहरण, राम-सीता-वियोग आदि दुःखसूचक प्रसंगों की चर्चा अभीष्ट नहीं है। बालकाण्ड के पश्चात् की रामकथा में दुःखों के वर्णन का अवकाश है, जिन्हें नहीं वर्णन करने का आदेश उन्हें अपने गुरु से प्राप्त हुआ था। यही कारण है कि उन्होंने भगवान् राम के बाल चरित्र से संबद्ध उत्सवों का ही सांगोपांग गायन किया है।[1] इस ग्रन्थ की रचना का कारण बतलाते हुए ग्रन्थकार ने काशीनरेश महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जी के यहाँ होने वाली रामलीला[2] तथा उक्त महाराज की आज्ञा से प्रेरणा प्राप्त करने की यों चर्चा की है—

"काशिराज तब मोहि बुलाई। भाष्यो सकल हेतु समुझाई ॥
तुलसीकृत महँ अति संक्षेपा। कहँ लगि करी अधिक परिलेपा ॥
ताते रचहु ग्रंथ यक ऐसो। तुलसीकृत रामायण जैसो ॥
युक्ति युक्ति गोस्वामी केरी। वाल्मीकि की रीति निवेरी ॥
मैं तब कह्यो परम सुख मानी। ग्रंथ रचौ तब कृपा महानी ॥"[3]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि महाराज काशीनरेश ने उन्हें वाल्मीकि और तुलसी दोनों से सहायता लेकर राम स्वयम्बर का निर्माण करने का आदेश दिया था। यहाँ तक कि बाल्मीकीय रामायण से सहायता लेते हुए "उक्ति युक्ति" तुलसी से "मानस" की ही आज्ञा थी। इसी आज्ञा को महाराज रघुराजसिंह ने सुख पूर्वक शिरोधार्य किया था और

---

१ (क) मैं असमर्थ नाथ दुख गाथा गावन में सब भाँती।
विरह विपत्ति व्यथा वर्णत में रसना रहि रहि जाती।
बहुरि स्वामिनी हरण महादुख बरणि जाइ कहु कैसे।
पुनि वियोग जग जननि नाथ को लागत कथन अनैसे ॥
ताते मम हरि गुरु निदेश दिय बालकाण्ड भरि पाठा।
करहु तजहु दुख कथा यथा ले घृत बुध त्यागत माठा ॥
ताते राम स्वयंवर गाथा रचन आश उर आई ॥
रघुपति बालचरित विवाह उछाह देहुँ मैं गाई ॥
—रा० स्व०, पृ० ५

(ख) गुरु निदेश मोहि पाठ करन को बाल कांड पर्यन्ता।
ताते बालकांड विस्तृत मैं विरचौं कथा सुसन्ता ॥
—रा० स्व०, पृ० ४६

२ रा० स्व०, पृ० २६६, प० २-१५

३ रा० स्व०, पृ० ६६६

अपने दरबार के अनेक कवियों से सहायता लेकर इस ग्रन्थ की रचना की थी।[१] राम स्वयम्बर एक वृहत् ग्रन्थ है। वह एक महाराज रघुराजसिंह की ही नहीं वरन् उनके दरबार के उद्भट विद्वानों की भी कृति है। इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन छोटे-बड़े सभी साहित्यिक तुलसी के मानस से पूर्णतया प्रभावित थे। यथार्थ में "मानस" के बाद रामचरित सम्बन्धी "मानस के जितने भी अनुकरण हुए हैं, उनमें "राम स्वयम्बर" का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रन्थ पर केवल तुलसी के ही नहीं किन्तु वाल्मीकि, व्यास एवं सूर के काव्यों का भी प्रभाव है। जैसा कि कवि ने स्वयं स्वीकार किया है—

> उक्ति युक्ति तुलसीकृत केरी और कहाँ में पाऊँ।
> वाल्मीकि अरु व्यास गोसाई सूरहि को शिर नाऊँ ॥[२]

पर इतना निर्विवाद रूप से सत्य है कि यह ग्रन्थ वाल्मीकि एवं तुलसी के काव्यों से ही सर्वाधिक प्रभावित है।[3] अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कवि ने तुलसी की जयध्वनि करते हुए उनकी रामायण के अमोघ प्रभाव को स्वीकार किया है[४] और उनका हवाला देते हुए उन्हीं की शब्दावली में उनके विचारों को उद्धृत किया है।[५] मानसकार की तरह

---

१ "विद्या गुरु नामानुज दासा। जासु अवधपुर सदा निवासा ॥
....
....
सब जुरि मिलि यह ग्रन्थ बनायो। राम कृपा मम नाम लिखायो।"
—रा० स्व०, पृ० ६७०, पं० ११—पृ० ६७१, पं० ६

२ रा० स्व०, पृ० ६

३ (क) ताते तुलसीकृत कथा, रचित महर्षि प्रबन्ध।
विरचौं उभय मिलाइके, राम स्वयंवर बन्ध ॥
—रा० स्व०, पृ० ६७

(ख) वाल्मीकि तुलसी की गाई। रच्यों रीति सोइ करत ढिठाई।
—रा० स्व० पृ० ६६८

(ग) तुलसीदास भाषा रामायण रच्यो सन्त सुखदाई।
महा मनोहर आशु प्रसादक संमत वेद सदाई ॥
जहँ तहँ तासु प्रबन्ध लै, ताहू के अनुसार।
राम स्वयम्वर रचहुँ मैं, जन्म व्याह विस्तार ॥
—रा० स्व०, पृ० ४९

(घ) रा० स्व०, पृ० ४६, पंक्ति १-२

४ "जय जय तुलसीदास, रामायण जिन निर्मयो ॥
जासु प्रभाव प्रकाश, रसिक होत बांचत जडउ ॥
—रा० स्व०, पृ० १

५ "तुलसीदास को संमत सोऊ कीन्हो ग्रन्थ बखाना।
तीन जन्म लगि भये असुर दोउ सो द्विज वचन प्रमाना ॥
—रा० स्व०, पृ० ६८

मुकुत न भये हते भगवाना। तीनि जनम द्विज वचन प्रवाना ॥
—मा० १.१२३.१

राम स्वयम्बर ने भी गणेश, सरस्वती एवं गुरु की वन्दना की है[1] और सत्संग[2] तथा भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम[3] पर बल दिया है। तुलसी की तरह उन्होंने भी सशक्त शब्दों में बार-बार सरयू एवं अयोध्या की महिमा का प्रतिपादन किया है[4] और अपनी यह आस्था व्यक्त की है कि इस "महाघोर कलिकाल" में संसार-सागर को पार करने के लिए भगवन्नाम के अतिरिक्त अन्य कोई आधार नहीं है।[5] उन्हीं की तरह अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुये इन्होंने भी कहा है—

नहिं जानों कछु छन्द गति, नहिं साहित्य संयोग।
नहिं शास्त्रन सम्बन्ध कछु, तापर ग्रस भव रोग ॥[6]

"रामचरितमानस" नाम की महिमा के सम्बन्ध में तुलसी ने लिखा हैं—

रामचरितमानस ऐहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा ॥[7]

अपने "राम स्वयंवर" के सम्बन्ध में रघुराजसिंह भी कहते हैं—

याको नाम स्वयंवर नामा। कहत सुनत पूरत मनकामा ।।[8]

अपनी रचना के सम्बन्ध में मानसकार ने कहा है कि—

छमिहहिं सज्जन **मोरि ढिठाई**। सुनिहहिं बाल बचन मन लाई ॥[9]

राम स्वयंवरकार भी कहते हैं—

क्षमौ रसिकजन **मोरि ढिठाई**। करौ प्रणाम चरण शिर नाई ।।[10]

---

१ रा० स्व०, पृ० १, पं० २-११, पृ० २, पं० १-३

२ जो कछु होय भलो कबहुँ, सो प्रभाव सत्संग ।।
—रा० स्व०, पृ० ६७१

३ नारायण को रूप नाम अरु लीला धाम सुहावन।
तिनको गाइ ध्याइ जग के जन लहत परम पद पावन ॥
....
....
—रा० स्व०, पृ० २

४ रा० स्व०, पृ० ६, पं० १६-२०; पृ० ८, पं० ३, पृ० ६, पं० १७, पृ० १३, दो०—अवधपुरी मंगलवती, निरखत मंगल दानि।
भू वैकुंठ विराजती, को कहि सके बखानि ।।
पृ० १३, पं० २३-२६; पृ० १४, पं० १-२

५ महाघोर कलिकाल यह, मो सम अघी अनेक।
....
....
सो ऐसे कलि के समय, केवल नाम अधार।
कौनहु मिस मुख ते कढत, पीसत पाप पहार ।।
—रा० स्व०, पृ० १०३-१०४

६ रा० स्व०, पृ० १०४
द्रष्टव्य—मा० १.६.८-११

७ मा० १.३५.७

८ रा० स्व०, पृ० ६६८

६ मा० १.८.८

१० रा० स्व०, पृ० ६६८

जिस प्रकार तुलसी ने मानस के उत्तर कांड में संक्षेप में सम्पूर्ण रामकथा का वर्णन किया है,[1] उसी प्रकार राम स्वयंवर के चतुर्थ प्रबंध में रघुराज सिंह ने भी।[2] इसी प्रकार इस ग्रन्थ में राम जन्म,[3] नामकरण उत्साह,[4] बाल-लीला,[5] विश्वामित्र के द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना पर राजा दशरथ की अधीरता,[6] अहल्या-उद्धार,[7] राम-लक्ष्मण को देखकर जनक

---

१ मा० ७.६४.७-७.६८.७

२ रा० स्व०, पृ० ५६ पृं० १८-पृ० ६०, पं० १३

३ मा० १.६१.१-१.१६२

रा० स्व, पृ० ७१-७२, कवित्त १-३, पृ० ७३, कवित्त २;
पृ० ७३, पं० २०-पृ० ७४, पं० २४—

"नवकंज सुनैना मंजुल वैना, कृत जग चेना भुजचारी,.......

....

....

बालक ह्वै रोवन लगे, सुरपालक निश्शंक।"

४ मा० १.१६७.२-१.१६७
रा० स्व, पृ० ६१, पं० १७-पृ० ६२ पं० १५—

"पुनि वसिष्ठ पद परशि भूपमणि विनेकरी कर जोरी।

....

....

चौथे सुत नृप रावरो, लहे शत्रुहन नाम॥"

५ मा० १.१६८; १.१६६;१.२०३ .५-६
रा० स्व०, पृ० ११६ कवित्त—

"योगी जाहि अत्र समाधि को लगाइ ध्यावैं, पावैं नहि साधन अनेकन करत हैं।

....

सोई रघुराज आज अवध अधीश जू के; अजिर में धूरि धूसरित बिहरत हैं॥"

६ मा० १.२०८.२-५—

"**चौथेंपन पायउं सुत चारी। बिप्र बचन** नहिं कहेहु **बिचारी**॥

....

....

सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥"

रा० स्व, पृ० १७५ कवित्त—

चौथेपन पायों पुत्र चारि, रावरे की कृपा, मांगो मुनिराज नहिं
वचन विचारि के॥

....

भनै रघुराज नेह सब पै समान मेरो तदपि जियोंगो कैसे राम
को निकारि के।

७ मा० १.२१०; १.२११.१-१.२११
रा० स्व०, पृ० २६३, पं० ११.१४; पं० २१-२४; पृ० १६४, पं० ३-१८
पृ० २६५, पं० १८-१६

की प्रेम मुग्धता,[१] जनकपुर-निरीक्षण,[२] सीता की पार्वती-पूजा[२], स्वयंवर-प्रसंग[३], सीता की अग्नि-परीक्षा,[४] राम-विरह में भरत की स्थिति,[५] राम-राज्याभिषेक के पश्चात् देव-स्तुति[६] इत्यादि भक्तिपरक स्थलों के जो वर्णन किये गये हैं, उन पर मानस का पूर्णतः प्रभाव परिलक्षित होता है। ग्रंथकार ने इन स्थलों में 'मानस' की शब्दावली का भी प्रचुर परिमाण में प्रयोग किया है। कहीं-कहीं तो इस ग्रंथ में 'मानस' की अर्द्धाली, एवं दोहा को प्रायः उसी रूप में या थोड़ा परिवर्तन करके ग्रहण कर लिया गया है। जैसे—

---

१ मा० १.२१४.८-१.२१६.६
रा० स्व० पृ० २९९, पं० १८-पृ० ३००, पं० ७—
" ....
....

ई दोउ बालक नृप कुल पालक धौं मुनिवंश वतंस बनाई।
किधौं उभय वपु धरयो ब्रह्म इत वेगि बताइय नाहिं दुराई।।
सहज विराग बलित मन मेरो इनहिं निरखि अब गयो थकाई।
छोड़ि ब्रह्म सुख रंग्यो रूपरस जैसे चन्द्र चकोर मिताई।।
जनक वचन सुनि कह्यो गाधिसुत सत्य सत्य तुम मृषा न गाई।।"

२ मा० १.२१९.२; मा० १.२१९-१.२२२.७
रा० स्व०, पृ० ३२१, पं० १४, पं० २६-२७, पं० ३०-३१, पं० ३४.
पृ० ३२२, पं० ४-७, पृ० ३२३, पं० ३-६, पं० ११-१२, पं० १८;
पृ० ३३४, पं० १-२, पं० ९-१०

३ मा० १.२३५.४-१.२३६
रा० स्व०, पृ० ३७१, पं० ९-२२; पृ० ३७२, पृ० ३७३, पं० १-१६

४ मा० १.२४१.४-१.२४२; १.२४७.१-१.२४७:
१.२४९.१-१.२५९.७;
रा० स्व०, पृ० ३८६, पं० १२-पृ० ३८८, पं० १३;
पृ० ४००, पं० ३-२२; पृ० ४०१, पं० १५-२४;
पृ० ४०२, पं० ३-पृ० ४१९, पं० १५

४ मा० ६.१०९.६-१५
रा० स्व०, पृ० ८९३, पं० ४-८; पृ० ८९६, पं० २२-पृ० ८९७, पं० १—
"पंचवटी महँ जानकी, राम रजायसु पाय।
पावक महँ प्रवेश किय, छाया रूप टिकाय।।
— — — —
— — — —
कहयो राम सों करत प्रणामा। लेहु शुद्ध प्रभु आपनि वामा।।"

५ मा० २.३२३; २.३२४.१-५, २.३२५; २.३२६.१-४; ७.१.८; ७.१ (ख)
रा० स्व०, पृ० ६१७ पं० १-११—
"लख्यो दूरते रघुपति भ्राता। राम प्रेम मूरति अवदाता।।
— — — —
— — — —
प्रेम नेम कीन्हें मन माहीं। टरे अवधि रहिहै तनु नाहीं।।"

६ मा० ७.१२ (क) —७,१४ (क)
रा० स्व०, पृ० ९५६, पं० १२—पृ० ९५८, पं० २०

(क) जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ।।

—मा० १.२१२.२ (उ०)

......................जिमि सुरसरि महि आई ।

—रा० स्व०, पृ० ५७, पं० ४

(ख) सूपनखा जिमि कीन्हि कुरुपा ।।

—मा० ७.६६.३ (उ०)

शूर्पणखा कुरुप जिमि कीन्ह्यो................

—रा० स्व० पृ० ५८, पं० ४

(ग) सभै सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाय ।
गुरु पद पंकज शीश धरि, बैठे आयसु पाय ।।[1]

—रा० स्व० पृ० ३२९

(घ) राजत राज समाज मधि, कौशल राज किशोर ।
सुन्दर श्यामल गौर तनु, विश्व विलोचन चोर ।।[2]

—रा० स्व०, पृ० ३८८

(ङ) भरे विलोचन प्रेम जल, पुलकावली शरीर ।[3]

—रा० स्व०, पृ० ४१७, पं० ११

'राम स्वयंवर' पर 'मानस' की भक्ति का इतना प्रचुर प्रभाव है कि उनका और अधिक विवेचन करना निबंध के कलेवर में अवांछनीय विस्तार लाना होगा । अतः अब नीचे 'मानस' एवं 'राम स्वयंवर' की कतिपय समानान्तर पंक्तियाँ उद्धृत करके ही अवशिष्ट प्रभाव की ओर इंगित करा देना पर्याप्त होगा—

(क) तेहि अवसर भंजन महि भारा । हरि रघुवंस लीन्ह अवतारा ।।

—मा० १.४८.७

प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा ।।

—मा० १.२०६.६ (उ०)

अवनि उतारन भार को, हरि लीन्ह्यौ अवतार ।

—रा० स्व०, पृ० ५

(ख) निज लोकहि बिरंचिगे देवन्ह इहइ सिखाइ ।
बानर तनु धरि धरि महि हरिपद सेवहु जाइ ।।

—मा० १,१८७

तब सब देव बोलाइ कै, कह्यौ वचन मुखचारि ।
....
....

---

१ मा० १.२२५
२ मा० १.२४२
३ मा० १.२५७ (उ०)

तुम सब तासु सहाइ हेत हित धरहु कपिन अवतारा ।।

—रा० स्व०, पृ० ४५

(ग) **जब जब** होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।

....

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

—मा० १.१२१.६-८

जब जब होती धर्म गलानी तब हरि धरि अवतारा ।
प्रगटत पावन चरित चारु जग हरत भूमि कर भारा ।।

—रा० स्व०, पृ० ६८-६९

(घ) **उपरोहित्य कर्म अति मन्दा** । वेद पुरान सुमृति कर निन्दा ।।
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही । कहा लाभ आगें सुत तोही ।।

—मा० ७,४८.६-७

उपरोहिती कर्म अति निंदित यद्यपि होत जगमाहीं ।
तदपि आज मोहि भयो सकल फल मो सम दूसर नाहीं ।।

—रा० स्व०, पृ० ९१

(ङ) गुरु गृहँ गए पढ़न रघुराई । अलप काल विद्या सब आई ।।

—मा० १.२०४.४

थोरे कालहिं में रघुनन्दन भाइन सखन समेतू ।
वेद शास्त्र पढ़ लियो दियो पुनि गुरु दक्षिण कुलकेतू ।।

—रा० स्व०, पृ० १५१

(च) **परसत पद पावन** सोक **नसावन** प्रगट भई तप पुंज सही ।
देखत रघुनायक जन **सुखदायक** सनमुख होइ कर जोरि रही ।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही ।

....
....
....

बिनती प्रभु मोरी में मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना ।
पद कमल परागा अति अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ।।

—मा० १.२११.१-१२

परसत पद पावन पाप **नशावन** पावन पतित होत क्षण में ।।
देखत रघुनायक जग **सुखदायक** लायक होत देवगण में ।।
अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा धरि उर धीरा वचन कही ।।

....
....
....

विनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी खोरी मम विसराई ।।
निज पद रति दीजै दासी कीजै छीजै तनु सेवकाई ।।

—रा० स्व०, पृ० २९४

(छ) स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्वचित चोरा॥
उठे सकल जब रघुपति आए। बिस्वामित्र निकट बैठाए॥

—मा० १.२१५.५-६

लोचन सुखद विश्वचित चोरन वय किशोर अति सुन्दरताई।
उठी समाज राज सुत देखत मुनि निज निकट लियो बैठाई॥

—रा० स्व०, पृ० २६६

(ज) बिप्र काजु करि बंधु दोउ मग मुनि बधू उधारि।

—मा० १.२२१ (पू०)

विप्र काज करि बन्धु दोउ, आये नगर विदेह॥

—रा० स्व०, पृ० ३२३

(झ) निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥

—मा० १.२२६.१

संध्या समय विचारि मुनि, आयसु दीन उदार।
नित्यनेम संध्या करहु, श्री अवधेश कुमार॥
मुनि शसन सुनि कुँवर दोउ, संयुत मुनिन समाज।
संध्या वंदन सविधि तहँ, किये युगल रघुराज॥

—रा० स्व०, पृ० ३२६

(ञ) स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

—मा० १.२२६.२

साँवरो सुन्दर एक मनोहर, दूसरो गौर किशोर सुखारी।
....
....
नैन विना रसना रसना विन, नैन कहौ किमि जाय उचारी॥

—रा० स्व०, पृ० ३५३-५४

(ट) लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।

—मा० १.२३२ (पू०)

दोउ दशरथ लाल, लता भवन ते प्रगट भे॥

—रा० स्व०, पृ० ३६१

(ठ) मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सोवरु सहज सुन्दर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥

—मा० १.२३६. ९-१०

गौरि कह्यो पुनि कुँवर सांवरो। शील नेह भल जानि रावरो॥
सो करुणा निधान जग जाना। तिहि समान को आन सुजाना॥

—रा० स्व०, पृ० ३७३

(ड) जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

—मा० १.२४१.४

जाकी जैसी भावना, रही मनहिं तिहि काल।
ताको तैसे लखि परे, दोउ दशरथ के लाल ॥

—रा० स्व०, पृ० ३८६

(ढ) जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ॥

—मा० १.२५९.६

जापर जाकर होत है, साँचो सरस सनेह।
सो ताको हठि मिलत है, यामें नहिं सन्देह ॥

—रा० स्व०, पृ० ४१९

१९. "राम रसायन"

"राम रसायन" तुलसी परवर्ती रामभक्ति शाखा का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य है। इसके प्रणेता जानकीप्रसाद जी हैं।[1] ये अयोध्या के कनक भवन के महन्त थे। इन्होंने अपनी कविता में अपना नाम "रसिक बिहारी" या "रसिकेश" लिखा है।[2] इनका जन्म सम्वत् १९०१ में हुआ था।[3] यों तो रामचरित पर इनके रचित बहुत से ग्रन्थ हैं[4] पर उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध "राम रसायन" ही है। यही इनकी अन्तिम कृति है और इसकी रचना इन्होंने संवत् १९३९ में की।[5] इसमें कवि ने सम्पूर्ण राम कथा का वर्णन किया है पर सुखमूलक प्रसंगों के वर्णन में ही उसकी वृत्ति विशेष रमी है। यही कारण है कि ऐसे प्रसंगों का सविस्तार एवं अन्यान्य प्रसंगों का संक्षिप्त अंकन किया गया है। यह प्रबन्ध आठ विधानों में विभाजित है। ग्रन्थकार के ही शब्दों में—

"राम रसायन के विशद, हेरौ आठ विधान ॥
प्रति विधान सुविभाग बहु, यथा योग अनुमान ॥
निर्णय१ जन्म२ विबाह३ वन४, अरु विभोग५ पुनि युद्ध ॥६
वर अभिषेक७ विहार८ ये, आठ विधान विशुद्ध ॥"[6]

यथार्थतः इस काव्य में रामभक्ति की शृंगारी प्रवृत्तियों का प्राचुर्य है। "रसिक-बिहारी" जी रसिक सम्प्रदाय के महात्मा हैं। उन्हें एकमात्र अपनी सिया स्वामिनी के चरण कमलों का ही अवलम्ब है।[7] उनकी दृष्टि में उपासना की जो पाँच विधियाँ हैं, उनमें शृंगार का ही प्रथम एवं मुख्य स्थान है।[8] यही कारण है कि उन्होंने अपने इस ग्रन्थ के

---

१ राम रसायन, पृ० ५, चौ० ३२ (उ०)
२ वहीं, चौ० ३४
३ "चन्द्र१ अकास० नन्द९ महि १ जानौ।
सो बिक्रम को संवत मानौ ॥"

—रा० र०, पृ० ४, चौ० २० (पू०)

४ रा० र०, पृ० २, दो० १४, १५ तथा पृ० ३
५ रा० र०, पृ० २, प० सं० ११ तथा पृ० ३
६ रा० र०, पृ० ६, दो० ११-१२
७ रा० रा०, पृ० ४५५, प० सं० ३३; पृ० ४५६, प० सं० ३८-३९
८ सो उपासना पंच विधि, मुख्य प्रथम शृंगार ॥
सख्य दास्य वात्सल्य पुनि, है ऐश्वर्य विचार ॥

—रा० र०, पृ० ४६२, दो० ९

ग्राम वधू विलाप वर्णन,[१] "ग्रामवधु स्नेह कथन वर्णन,"[२] सीता-हरण पर राम द्वारा प्रेम की व्याख्या,[३] सुग्रीव द्वारा सीता के आभूषण दिखाये जाने पर राम के उद्‌गार,[४] सीता के विरह में व्याकुल होकर राम का विलाप,"[५], अष्टयाम लीला[६] हिंडोल विहार,[७] एवं षड्-ऋतुओं के अनुसार विरह-वर्णन[८] आदि प्रसंगों में रसिक सम्प्रदाय की साधना के सिद्धान्तों को मुखरित करने का सफल प्रयास किया है। अपने काव्य में इस तरह की शृंगारी भावनाओं की योजना करते हुए भी कवि में हम जो एक संयम का प्रवाह पाते हैं, वह निश्चय ही रामचरितमानस की भक्ति का प्रभाव है। इस ग्रन्थ में कहीं भी राम-सीता की शृंगारिक भावनाओं में ऐन्द्रिकता का समावेश नहीं हुआ है और सदैव भक्ति की मर्यादा अक्षुण्ण रही है। उदाहरणार्थ राम के राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के पश्चात् राम-सीता के विलास-वर्णन सम्बन्धी निम्नांकित पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं—

"ग्रीष्म ऋतु कबहूँ जल बिहरैं सखन सहित रघुवीरा॥
कबहूँ रहसि सरयू मधि सितसुतरमैं सखिन की भीरा॥
कबहूँ सुमन कुंज महँ राजैं कहुं उशीर गृहमाहीं॥
दशरथ सुत अरु जनक नन्दिनी इमि सानन्द विलसाहीं॥"[९]

इतना ही नहीं, कवि ने जो राम-वन-गमन प्रकरण में "ग्रामवधु स्नेह कथन वर्णन" प्रसंग की अवतारणा की है, उसकी पुष्टि उन्होंने "रामचरितमानस" की पंक्तियों से ही की है।[१०] जहाँ मानसकार ने उस प्रसंग की ओर व्यंग्यात्मक ढंग से संकेतमात्र किया है, वहाँ राम रसायनकार ने उसका अभिधात्मक रूप में विस्तृत वर्णन प्रस्तुत कर दिया है।

इस काव्य के प्रणयन में कवि ने संस्कृत एवं भाषा के अनेक पूर्ववर्ती ग्रन्थों से भाव ग्रहण किया है।[११] अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही उन्होंने सभी प्रमुख आधार ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है।[१२] इसी क्रम में ग्रन्थकार ने यह भी स्वीकार किया है कि उन्होंने तुलसीकृत सभी

---

१ रा० र०, पृ० १८७-१९५, छं० १-८५
२ वही, पृ० १९५-१९८, छं० १-४०
३ वही, पृ० २४४, प० सं० ७५-८०
४ वही, पृ० २५६, प० सं० ३०-३२
५ वही, पृ० ३८६, प० सं ३४-४१
६ रा० र०, पृ० ५०२-५०९, प० सं० १-८९
७ वही, पृ० ५१४-५२०, प० सं० ५३-१०४
८ वही, पृ० ५३०-५३७, प० सं० १७-७४
९ रा० रा०, पृ० ५१०, छंद ९
१० "॥तुलसीकृता रामायणे अयोध्याकांडे।
चौ० सीता लषण सहित रघुराई। ग्राम निकट जब निसरहिं जाई॥
सुनि सब बालवृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काज विसारी॥
नारी सनेह विकल सब होंहीं। चकई सांझ समै जनु छोंहीं॥[१]
इत्यादि॥" रा० र०, पृ० १९८, छन्द ४० के बाद
११ रा० र०, पृ० ६, सों० १०; पृ० ११, चौ० ५३ (पू०)
१२ वही, पृ० ७, चौ० २३-३०

ग्रन्थों का अवलोकन किया है ।[1] उन्होंने स्थल-स्थल पर अपने कथानक को पुष्ट करने के लिए अनेक सहायक ग्रन्थों के उद्धरण भी दिए हैं[2] किन्तु यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि उनकी शैली, शब्दावली और भाव पर तुलसी के "मानस" का ही विशेष प्रभाव पड़ा है। "मानस" का यह प्रभाव इस ग्रन्थ के प्रारम्भ से ही परिलक्षित होने लगता है। उदाहरणार्थ अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुए तुलसी कहते हैं—

कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू । सकल कला सब विद्या हीनू ।।[3]
....
....

कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ । मति अनुरूप राम गुन गावउँ ।[4]

तो "रसिक बिहारी" जी भी कहते हैं—

नहिं कबिहौं कोविद नहौं, नहीं कछू गुणमन्त ।
हरिदासन को दास हौं, कृपा करत सब सन्त ।।[5]

आगे चलकर "रसिक बिहारी" कहते हैं—

पै निज बुधि भरोस नहिं आवे । स्वमंदता हिय सकुचावै ।।
याते सब सज्जन समुदाई । दीन जानि कै करौ सहाई ।।[6]
....
....

याते विनय करौं कर जोरी । क्षमियो सकल ढिठाई मोरी ।।[7]

वस्तुतः उपर्युक्त पंक्तियाँ मानस की इन पंक्तियों—

"निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं । तातें विनय करउँ सब पाहीं ।
करन चहउँ रघुपति गुन गाहा । लघुमति मोरि चरित अबगाहा ।।[8]
....
....

छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई । सुनिहहिं बाल बचन मन लाई ।।[9]

से सर्वथा प्रभावित हैं। रामचरित की अपारता को दोनों कवियों ने एक स्वर से स्वीकार

---

१ वही, पृ० ७, चौ० २८ (उ०)——"तुलसीकृत २२ सब ग्रन्थ निवेरी ।।"
२ वही, पृ० १४, चौ० २
३ मा० १.९.८
४ मा० १.१२.९
५ रा० र०, पृ० ३, दोहा १६
६ वही, पृ० ११, चौ० ५५
७ वहीं, चौ० ५७ (पू०)
८ मा० १.८.४-५
९ मा० १.८.८

किया है[1] तथा अपने-अपने ग्रन्थ के अध्ययन, श्रवण एवं हृदयंगम से होने वाले लाभ का भी प्रायः एक ही समान वर्णन किया है।[2] मानसकार का यह अखण्ड विश्वास है कि—

सारद दारु नारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अन्तर जामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी॥[3]

राम रसायनकार ने उसी विश्वास को यों मुखरित किया है—

रघुवर प्रेरित शारदा, आय बसी हिय धाम॥
सोई वर्णन करत है, सिय सियपति गुण ग्राम॥[4]

इसी प्रकार तुलसी की तरह ही इस ग्रन्थ के प्रणेता ने भी भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम पर काफी बल दिया है[5] और अयोध्या[6], सरयू[7] एवं अयोध्या तथा चित्रकूट-वासियों[8] की महिमा का जोरदार शब्दों के गायन किया है। गोस्वामी जी के ही समान "रसिक बिहारी" जी ने भी सन्त, गुरु, ब्राह्मण एवं सत्संग के प्रति अपनी अद्भुत आस्था व्यक्त की है[9] और इस ग्रन्थ के अनेकानेक स्थलों पर भगवान राम के नाम की अपार महिमा घोषित की है।[10] उनका स्पष्ट कथन है—

अति समर्थ सियराम सों, होहि भक्ति आधीन।
भक्ति नाम आधीन है, नाम सुगुरु आधीन॥
गुरु सतसंग अधीन है, संग सुभाग्य अधीन॥
भाग्य हीन बहु जन्म के, ले पति कर्म मलीन॥
सो कुभाग्य कौ जो चहै, हो सुभाग्य सुखधाम॥
तौ अनन्य दृढ़ नेमते, सुमिरे सीताराम॥[11]

---

१ मा० १.३३.६; १.१०५.३; ७.५२.२
रा० र०, पृ० ५, सो० ३, पृ० ४५, दो० १२४ (पू०); पृ० ६०६, दो० ६७; पृ० ६०७; दो० ७२; पृ० ६०८, प० सं० ८२-८४

२ मा० १.१५.१०-११
रा० र०, पृ० ११, चौ० ४९-५२, पृ० ६०८, चौ० ८७

३ मा० १.१०५.५-६

४ रा० र०, पृ० ११, दो० ६१

५ वही, पृ० १४, दो० ७६; पृ० ६०६, दो० ६५

६ वही, पृ० १२, दो० ६६-६७, पृ० १६, चौ० ३४ (पू०), पृ० १७, दो० ४७
पृ० ४३७, प० सं० २८, पृ० ४६३, दो० २१; पृ० ६०५, दो० ५२-५४

७ वही, पृ० १२-१३, प० सं० ६८-७२, पृ० ४३७, प० सं० २८, पृ० ४६३, दो० २१, पृ० ६०५, दो० ५२

८ वही, पृ० १३, दो० ७३-७४, पृ० २००, दो० १७

९ वही, पृ० १४, चौ० ३ (पू०); पृ० १९, चौ० ४, (उ०); पृ० ४६६, दो० ५५ (पू०); पृ० ४६९, दो० ७७

१० वही, पृ० ४५, दो० १२४, पृ० १४१, प० सं० २०, पृ० ४५३, प० सं० ११-१२, पृ० ४६६-४६९, प० सं० ५७-७६, पृ० ४७२, प० सं० १०५

११ वही०, पृ० ४६३, दो० २५-२७

इतना ही नहीं, राम रसायन में रामावतार के हेतु,[1] भगवान का प्राकट्य,[2] विश्वामित्र का अयोध्या आकर राजा दशरथ से राम-लक्ष्मण की याचना,[3] राम-लक्ष्मण को देखकर जनक की प्रेम-मुग्धता,[4] पुष्पवाटिका निरीक्षण,[5] पार्वती-पूजन,[6] धनुष-यज्ञ वर्णन,[7] परशुराम प्रसंग,[8] राम राज्याभिषेक,[9], राम-कैकेयी तथा राम-दशरथ संवाद,[10] राम-वन-गमन के समय लक्ष्मण-राम-संवाद,[11] सुमित्रा-लक्ष्मण-संवाद,[12] नगरवासियों की विकलता,[1] मार्गवासियों का प्रेम,[13] राम-वाल्मीकि-संवाद,[14] भरत-कौशल्या-संवाद,[15]

---

१ मा० १.१२१.२-८
राο रο, पृ० २१, चौ० २

२ मा० १.१९१.१–१.१९६
रा० र०, पृ० ३२-३४, प० सं० २०-३४ (पू०)

३ मा० १.२०६.२–१.२०८ (ख)
रा० र० पृ० ८४-८५, चौ० १ (उ०)—२६

४ मा० १.२१६.१-५
रा० र०, पृ० ९०, प० सं० ४

५ मा० १.२२७.१–१.२३५.३; १.२३७.१-४
रा० र०, पृ० १०४-११५, प० सं० १-१२७

६ मा० १.२३५.४–१.२३६
रा० र०, पृ० ११५-१६, प० सं० १२८-१३३

७ मा० १.२४०.४–१.२४१.४, १.२४४, १.२५५.६–१.२५७.८
रा० र०, पृ० ११७, दो० ४-६, पृ० ११८, प० सं० १७-२२

८ मा० १.२६८.२–१.२८५.७
रा० र०, पृ० १२३-१२६, प० सं० १-५०

९ मा० २.२–२.१०.३
रा० र०, पृ० १५७-५८, प० सं० ३-१०

१० मा० २.४१.७-८, २.४२.१, २.४४.१-५, २.४६- ३-४
रा० र०, पृ० १५९, प० सं० २६-३१

११ मा० २.७२.४-८
रा० र०, पृ० १६५, प० सं० ८५

१२ मा० २-७४.२-४
रा० र०, पृ० १६८, चौ० १०७—
"अंक लगाय कही बलि ताता । राम सीय तुव दुहुँ पितु माता ।।
जाहु संग सेवौ सतभाये । सुनि शिर नाय लषण उठि धाये ।।"

१३ मा० २.८३.३.३—
"चलत रामु लखि अवध अनाथा । बिकल लोग सब लागे साथा ।।"
रा० र०, पृ० १७०, दो० १३४-१३५, पृ० १७३, चौ० १७७—
चले राम संग पुर नर नारी । आरत रुदन शोर चहुँ भारी ।।
....

१४ मा० २.११४.१–२.१२२
रा० र०, पृ० १७६, दो० १-८, पृ० १८०, प० सं० ३४-४०
मा० २.१२६.१–२.१३२.३
रा० र०, पृ० १९९, प० सं० ७-१०

१५ मा० २.१६७.५–२.१६८
रा० र०, पृ० २०४, प० सं० ४७-४८

चित्रकूट-प्रसंग,[1] भरत द्वारा नन्दि ग्राम में कठोर तपस्या और राजसिंहासन पर चरण-पादुका की स्थापना[2], शरभंग-प्रसंग,[3] मारीच-रावण-संवाद[4] शबरी की प्रेम-विह्वलता,[5] जाम्बवंत-हनुमान्-संवाद,[6] सीता-हनुमान-संवाद,[7] रावण-हनुमान-संवाद,[8] विभीषण का राम की शरण के लिए प्रस्थान और शरण-प्राप्ति,[9] राम द्वारा रामेश्वर की स्थापना,[10] कुम्भकर्ण

---

१ (क) मा० २.२०३.३-७, २.२१६.४-७
रा० र०, पृ० २०५, चौ० १४-१६

(ख) मा० २.२८०.१–२.२८०
रा० र०, पृ० २०७, चौ० ३६

(ग) मा० २.२५८.२-५, २-२६४, २.२६६-६-८
रा० र०, पृ० २०८, दो० ५१-५३

(घ) मा० २.३१६.४—
"प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥"

रा० र०, पृ० २०८, दो० ५८—
"तब प्रमुदित ह्वै राम निज, चरण पादुका दीन॥
करि प्रणाम सो प्रीति युत, भरत शीश धरि लीन॥"

२ मा० २.३२३–२.३२४.५, २.३२५
रा० रा०, पृ० २०९, दो० ६७-६८, पृ० २१०, दो० ७४

३ मा० ३.७.८–३.९.१— ....
अस कहि जोग अगिनितनु जारा। राम कृपा बैंकुण्ठ सिधारा॥
रा० र०, पृ० २१७, प० सं० १३-१७— ....
योगानल तनु दाह करि, गये विष्णु के लोक॥

४ मा० ३.२५.१–३.२६.७— ....
उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना॥
रा० र०, पृ० २२५, प० सं० १२-१५— ....
तम मारीच चलो गुणि साथा। मरण भलो रघुबर के हाथा।
....

५ मा० ३.३४.६-३.३५.४; ३.३६.१४-१५
रा० र०, पृ० २५२-२५३, प० सं० ३६ (उ०) — ४३; पृ० २५६, चौ० ७५-७६

६ मा० ४.३०.१-११
रा० र०, पृ० २७३, प० सं० ७३-७८

७ मा० ५.१६.३-९; ५.२७.१-२
रा० र०- पृ० २८७, प० सं० १२७-१३३ (पू०)

८ मा० ५.२२.७-५.२४.६ (पू०)
रा० र०, पृ० २९४-९५, प० सं० ५५-६०

९ मा० ५.४१-५.४८
रा० र० पृ० ३१५-३२१, प० सं० १-५४

१० मा० ६.२.३-६.३.४
जे रामेश्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥
....

रा० र०, पृ० ३२६, प० सं० ५१—
"तब कहा वीर रघुवीर धीर। जो हरखि चढ़ाइहि गंग नीरं॥
अथवा रामेश्वर दरश आय। करिहैं सुमुक्त पे हैं सदाय॥"

का रावण को उपदेश,[1] विभीषण-कुम्भकर्ण-संवाद,[2] राम के अयोध्या लौटने पर सब का मिलनानंद,[3] रामराज्य-वर्णन[4] इत्यादि भक्तिपरक स्थल 'मानस' की भक्ति से पूर्णतः प्रभावित हैं। कहीं-कहीं तो राम रसायनकार ने 'मानस' की अर्द्धालियों को भी प्रायः उसी रूप में या थोड़ा परिवर्तन करके ग्रहण कर लिया है। उदाहरणार्थ यहाँ कुछ वैसी अर्द्धालियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

(क) विश्वामित्र महामुनि ज्ञानी।[1]

—रा० र०, पृ० ८४, चौ० १ (उ०)

(ख) जनक पत्रिका बांचि सुनाई।[2]

—रा० र०, पृ० १३०, चौ० ७ (पू०)

(ग) बजहिं बाजने विविध विधाना।

—रा० र०, पृ० १३६, चौ० ६७ (पू०)

(घ) सकल देहिं कैकेयिहि गारी।[4]

—रा० र०, पृ० १६१, चौ० ५१ (उ०)

(ङ)..........जो ये कंद मूलफल खाहीं॥[5]

—रा० र०, प० १८०, प० सं० ३८ (पू०)

(च) प्राण कंठगत भये नृपाला॥[6]

—रा० र०, पृ० २०२, चौ० २६ (उ०)

"रास रसायन" पर 'मानस' की भक्ति के प्रभाव को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए दोनों ग्रंथों की कतिपय समानान्तर पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

(क) बेद तत्व नृप तव सुत चारी॥

— मा० १.१६८.१ (उ०)

वेदमूल तव पुत्र भुवाला।

—रा० र०, पृ० १६, चौ० ५ (उ०)

---

१ मा० ६.६२-६.६३.५
रा० र०, पृ० ३६४, प० सं० १८-१६

२ मा० ६.६४.२-६
रा० र०, पृ० ३६५, प० सं० २५ (उ०) -२६ (पू०)

३ मा० ७.६.३-५
रा० र०, पृ० ४३७-३८, प० सं० ३६-३७

४ मा० ७.२०.७-७.२३
रा० र०, पृ० ४५०-५१, प० सं० ३१-४६

५ मा० १.२०६.२ (पू०)

६ मा० १.२६५.१ (उ०)

८ मा० ?.११.१ (पू०)

६ मा० २.४७.१ (उ०)

१० मा० २.१२०.१ (पू०)

११ मा० २.१५४. १(पू०)

(ख) राम अनंत अनंत गुन अमित कथा विस्तार।

—मा० १.३३ (पू०)

राम अनन्त अनन्त गुण, सुयश चरित्र अनन्त।

—रा० र०, पृ० ४५ दो० १२४ (पू०)

(ग) ए दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा।।

—मा० १.२२१. ३

ढोटा हैं ये अवधेशक मानों सु बाल मराल के जोटा हैं आछे॥

—रा० र० पृ० ४६, प० स० १३० (पू०)

(घ) समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।

—मा० १.२२७.२

गुरु पूजन को समय निहारी। चले प्रसून लेन फुलवारी॥

—रा० र०, पृ० १०४, चौ० २ (पू०)

(ङ) चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥

—मा० १.१९८.६

यद्यपि हैं दुहुँ भैया सुखमा धाम। तदपि अधिक सुखसागर नागर राम॥

—रा० र०, पृ० ११०, छंद ६६ (उ०)

(च) लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाई।

—मा० १. २३२ (पू०)

प्रगटे लतन की ओट ते ताहीं समें रधुकुल मनी॥

—रा० र०, पृ० ११४ छंद १२० (पू०)

(छ) अधिक सनेह देह भे भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥

—मा० १.२३२.६

आनंद हिय उमंगो रहीं जकि चित्र सी सब जहँ तहीं।
मानों शरद निशिचन्द्र को यकटक चकोरो लखि रहीं॥

—रा० र०, पृ० ११४, छंद १२० (उ०)

(ज) जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करे न सहस सहाइ॥

—मा० २.१८५

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू॥

—मा० २.२७७.५

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू॥

—मा २.२९१.१-२

जरि जाय सो जप योग ज्ञान सनेह सो जरि जाय री॥
जरि जाय जननी जनक सुत हित जिनहिं येन सुहायरी॥

जरि जाय सो गुरु बंधु तन मन प्राण धन जरि जाय री ।।
जो भजत रघुकुल चंद को नहिं करत अधिक सहाय री ।।
—रा० र०, पृ० ११४, छंद १२२

(झ) अति सनेह बस सखीं सयानी । नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी ।।
—मा० १.३३४.६

जननी मुख चूमि कपोल गहे । तिय धर्म सिखाय सुबैन कहे ।।
—रा० र०, पृ० १४६, छंद १२ (उ०)

(ञ) राजकुमारि बिनय हम करहीं । तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं ।।
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी । बिलगु न मानब जानि गवाँरी ।।
मा०—२.११६.६-७

एकै कहैं सुनो सिय स्वामिनि बचन कहत हम डरहीं ।।
....
....
जानि गँवारि न विलग मानिये चूक क्षमा सब कीजे ।।
—रा० र०, पृ० १८०, प० सं० ४०

(ट) **जनक सुतहि** समुझाइ करि **बहु बिधि धीरजु** दीन्ह ।
मा० ५.२७ (पू०)

जनक सुतहि हनुमंत पुनि, **बहु बिधि धीरज दीन** ।।
—रा० र०, पृ. २८७, दो. १३१ (उ.)

(ठ) सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ।।
मा० ५.४३

त्याग करै शरणागत को तिहि की सम पातक और नहीं है ।।
रा० र०, पृ० ३१८, प० सं० २७ (पू०)

(ड) **साम दान अरु दण्ड** बिभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ।।
मा० ६.३८.६

साम दान अरु दण्ड भेद ये चार चहिय नृप माहीं ।।
रा० र० पृ० ३६४, प० सं० १६ (पू०)

(ढ) आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ।।
तव पद पंकज प्रीति निरन्तर । सब साधन कर यह फल सुन्दर ।।
मा० ७.३६.३-४

विद्या बुद्धि विवेक को, फल है यही पवित्र ।।
कहै सुनै विरचै गुणें, सीता राम चरित्र ।।
रा० र०, पृ० ६६८, दो० ८५

(ण) जे एहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ।।
होइहहिं राम चरन अनुरागी । कलिमल रहित सुमंगल भागी ।।
मा० १.१५.१०-११

सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अन्त काल रघुपति पुर जाहीं।।

मा० ७.१५.४

सीता रामचरित यह कोई। बाँचै सुनै सुनावै जोई।
सो इह लोक स्वरुचि फल पावै। अन्त समय श्रीराम मिलावै।।

रा० र०, पृ० ६०७ चौ० ८७

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि "राम रसायन" पर "मानस" की भक्ति का प्रचुर प्रभाव पड़ा है।

१२. "साकेत"

खड़ी बोली के रामभक्ति सम्बन्धी आधुनिक काव्यों में मैथिलीशरण गुप्त के "साकेत" का प्रमुख स्थान है। इसकी सरल, सरस एवं भावमय पंक्तियाँ "रामचरित मानस" की पंक्तियों की तरह सर्वसाधारण को मुग्ध करने में सर्वथा समर्थ हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति-भावना एवं भावाभिव्यंजन-पद्धति से गुप्त जी बहुत कुछ प्रभावित हैं। यह सत्य है कि उन्होंने राम के समग्र चरित्र का "मानस" की भाव-गरिमा के साथ अंकन नहीं किया है तथापि सगुण ब्रह्म राम तथा उनकी आह्लादिनी शक्ति सीता के प्रति उनकी भक्ति ठीक वैसी ही है जैसी तुलसी की। यथार्थतः तुलसी गृहस्थाश्रम से विरक्त रहने वाले और गुप्त उसका पालन करने वाले भक्त थे। अतः युग-प्रभाव एवं कर्म-भेद की दृष्टि से दोनों में थोड़ा अन्तर होना स्वाभाविक है अन्यथा यदि नई भाषा-शैली एवं आधुनिक आन्दोलनों के प्रभाव को "साकेत" से निकाल दिया जाय तो गुप्तजी और तुलसी के भावों में कोई विशेष अन्तर नहीं रह जायगा।

वस्तुतः गुप्तजी को अपने पिता से उत्तराधिकार के रूप में रामभक्ति प्राप्त हुई थी। उनके पिता ने स्वयं कहा है—

"हम चाकर रघुवीर के, पटौ लिखौ दरबार,
अब तुलसी क्या होंहिगे नर के मनसबदार?
....
....
....
....
चातक सुतहिं सिखावहीं, आन धर्म जिन लेहु,
मेरे कुल की बानि है स्वाँति बूँद सों नेहु।"[1]

अर्थात् वे राम के दास थे और रामभक्ति करना ही उनके कुल का धर्म था। आगे चलकर उन्होंने यह भी कहा है कि—

"वहाँ कल्पना भी सफल, जहाँ हमारे राम।"[2]

गुप्तजी अपने पिता के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखते थे। अतः ये भी अपने पिता की तरह रामभक्त हुए तो यह सर्वथा उचित ही था। इसमें किसी को कदापि सन्देह नहीं हो

---

१ साकेत, समर्पण
२ साकेत समर्पण; द्रष्टव्य मा० १.११.४-६

सकता कि गुप्तजी की कामना थी कि "साकेत" को ए, भक्तिपूर्ण काव्य का रूप दें और यह समर्पण लिखते समय उन्हें इस बात में पूर्ण विश्वास था कि यह एक भक्तिपरक ग्रन्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसीलिए उन्होंने अपने परम रामभक्त पिता को निशंक भाव से उनके श्राद्ध के दिन इस साकेत को पिण्ड के समान समर्पित किया।[1] यही नहीं गुप्त जी ने इस समर्पण के बाद जो संस्कृत के श्लोक संग्रहीत किए हैं वे सभी भक्तिपरक ही हैं। यद्यपि गीता से उन्होंने जो श्लोक उद्धृत किया है, वह कृष्ण भगवान के सम्बन्ध में है तथापि इससे गुप्तजी का रामभक्त होना अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि स्वयं तुलसी ने भी विनयपत्रिका में कृष्ण को राम के समान ही परब्रह्म का अवतार बतलाया है।[2] इतना ही नहीं, तुलसी ने उक्त ग्रन्थ में ही एक पद लिखा है जिसे हरिशंकरी कहते हैं और उसमें राम और शिव में भी कोई अन्तर नहीं माना गया है।[3] तुलसी जिस प्रकार सम्प्रदाय मुक्त राम भक्त वैष्णव थे, उसी प्रकार गुप्त जी भी हैं और इस बात का पता उनके यशोधरा काव्य से भी चल जाता है। जहाँ उन्होंने बुद्ध भगवान को भी राम के समान अवतार मानकर उनका यशः कीर्तन किया है।

संस्कृत श्लोकों के पश्चात् उन्होंने जो पद्य उद्धृत किए हैं वे सब रामचरितमानस के ही हैं और उनमें से अन्तिम पद्य[2] तो यह स्पष्ट सिद्ध कर देता है कि तुलसी के समान गुप्त जी ने भी निर्गुण एवं सगुण राम रूप को स्वीकार करते हुए भी सगुण ब्रह्म को ही महत्व दिया है। रामचरितमानसकार का कथन है—

> अगुन अरुप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।[4]

साकेतकार भी कहते हैं।

> हो गया निर्गुण सगुण साकार है,
> ले लिया अखिलेश ने अवतार है।[5]

---

१ साकेत समर्पण की अन्तिम पंक्तियाँ—

> तुम दयालु थे दे गये कविता का वरदान।
> उसके फल का पिण्ड यह लो निज प्रभु गुणगान।
> आज श्राद्ध के दिन तुम्हें, श्रद्धा-भक्ति समेत,
> अर्पण करता हूँ यही निज कवि-धन "साकेत।"

२ विनयपत्रिका, पद ९८, पंक्ति ३-६—

> जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करम की डोरी।
> सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यौ सकत न छोरी।।
> जाकी मायाबस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायो।
> करतल ताल बजाय ग्वाल जुबतिन्ह सोइ नाच नचायो।।

द्रष्टव्य—वहीं, पद पंक्ति ५२, १३-१४, पद ११८, पं० ७-८

३ विनय पत्रिका, पद ४९

४ मा० ७.१११.११—

> "भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तव सुनिहों निरगुन उपदेशा।।"

५ मा० १.११८.२

६ साकेत, पृ० १२

समर्पण और भूमिका की चर्चा करने के पश्चात् हम गुप्त जी के मंगलचरण के पूर्व के दो पद्यों के सम्बन्ध में निवेदन करना चाहते हैं। पहले में "मुनि-सत्य-सौरभ की कली" और "कवि-कल्पना" से युक्त साहित्य-वाटिका की चर्चा कर गुप्त जी ने तुलसी का प्रभाव स्वीकार-सा ही कर लिया है। क्योंकि तुलसी ने भी तो अपने "मानस" के प्रारम्भ में ही "मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥"[1] का स्पष्ट उद्घोष किया है। साथ ही तुलसी के समान गुप्तजी ने भी अपने को रंक कहकर विनम्रता प्रदर्शित की है।[2]

दूसरे पद्य में भी तुलसी का प्रभाव अनायास ही लक्षित हो जाता है। इसमें गुप्तजी ने अपने राम के सम्बन्ध में कहा है कि वे यदि ईश्वर नहीं हैं तो भी उनकी भक्ति से वे परांमुख नहीं हो सकते।[3] तुलसी ने भी इससे मिलता-जुलता भाव व्यक्त किया है कि उनका राम में ही प्रेम है चाहे वे "जगदीश" हों या "महीस'।[4] एक बात और बड़े मार्के की है कि तुलसी ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में एक ही श्लोक में "वाणी एवं विनायक"[5] की वन्दना की है और गुप्त जी ने भी अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में अलग-अलग पद्यों में विनायक एवं वाणी की ही वन्दना की है।[6]

यहाँ यह निवेदन कर देना भी अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि तुलसी के समान गुप्त जी भी राम एवं सीता को क्रमशः दशरथ एवं जनक के सुकृत की मूर्ति मानते हैं।[7] वे दोनों ही राम को अपना "प्रभु" बतलाते हैं। आगे चलकर गुप्तजी भी दशरथ-राज्य-

---

१ मा० १.१३.१०

२ (क) मा० १.८.६ (उ०)—मन मति रंक मनोरथ राऊ।
(ख) साकेत (मंगलाचरण के पूर्व के पद में)—
नृप-हेमपुद्रा और रंक वराटिका॥

३ राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे,
तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे।
—साकेत (मंगलाचरण के पूर्व का पद)

४ जौं जगदीस तौ अति भलौ जौं महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग॥ —दोहावली, दो० ६१

५ मा० १. श्लो० १

६ (क) जयति कुमार अभियोग गिरा गौरी-प्रति।
....
....
ऊपर ही झेल कर, खेल कर खाते हैं।" —साकेत, मंगलाचरण
(ख) अयि दयामयि देवि, सुखदे, सारदे,
....
माँ, मुझे कृतकृत्य करदे आज तू। —साकेत, सर्ग १, पृ० ११

७ (क) जनक सुकृत मूरति बैदेही। दशरथ सुकृत रामु धरें देही॥
—मा० २.३१०.१
(ख) धन्य दशरथ जनक पुण्योत्कर्ष हे। —साकेत, पृ० १२

वर्णन में तुलसी के राम-राज्य-वर्णन का अनुकरण करते हुए प्रतीत होते हैं। इस तथ्य के समर्थन के लिए बड़ी आसानी से उक्त दोनों महाकवियों के वर्णनों से बहुत सी मिलती-जुलती पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं।[1]

---

१ (क) तीर तीर देवन्ह में मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुन्दर॥
—मा० ७.२९.४

तीर पर हैं देव-मन्दिर सोहते,
....
....
हँस रही हैं खिल खिलाकर क्यारियाँ।—साकेत—पृ० १५

(ख) चारु चित्र साला ग्रह ग्रह प्रति लिखे बनाइ।
रामचरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ॥
—मा० ७.२७

बाजार रुचिर न बनइ बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए।
....
....
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे॥
—मा० ७.२८.९-१२

रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥
—मा० ७.२९

धान्य-धन-परिपूर्ण सबके धाम हैं,
रंगशाला से सजे अभिराम हैं।
नागरों की पात्रता, नव नव कला,
क्यों न दे आनन्द लोकोत्तर भला?
ठाठ है सर्वत्र घर या घाट है,
लोक-लक्ष्मी की विलक्षण हाट है। —साकेत पृ० १६

(ग) ससि संपन्न सदा रह धरनी। —मा० ७.२३.६५
अलग रहती हैं सदा ही ईतियाँ,
भटकती हैं शून्य में ही भीतियाँ। —साकेत पृ० १६

(घ) विधु महिपूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज॥
—मा० ७.२३

नीतियों के साथ रहती रीतियाँ,
—साकेत पृ० १६

(ङ) जहं तहं नर रघुपति गुन गावहिं। —मा० ७.३०.१(पू०)
पूर्ण हैं राजा-प्रजा की प्रीतियाँ। —साकेत पृ० १६

(च) दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
—मा० ७.२२.(पू०)

एक तरु के विविध सुमनों से खिले,
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले। —साकेत पृ० १५

तुलसी के समान गुप्तजी ने भी सीता को माता कहा है और उनके मुख पर झलकने वाले मातृत्व का वर्णन किया है।[1] गुप्तजी ने भी तुलसी की तरह भारतीय संस्कृति की मर्यादा की रक्षा करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने सीता से राम को "नाथ" शब्द से ही सम्बोधित कराया है।[2] हाँ, समय के प्रवाह में पड़कर गुप्तजी सीता के वर्णन और सम्बोधन में कुछ अधिक आधुनिक बन गये हैं। जहाँ रामचन्द्र ने रामचरितमानस में सीता को "राजकुमारी" या "प्रिया"[3] कहकर ही सम्बोधित किया है वहाँ गुप्त जी ने लक्ष्मण से उर्मिला को "प्रेयसी"[4] कहलाया है। इसी तरस क्रोधान्ध कैकेयी को जहाँ "मानस" के राम "माता" कहकर सम्बोधित करते हैं, वहाँ "साकेत" के राम उन्हें "देवी" शब्द से अभिहित करते हैं। तुलसी ने सीता के सौन्दर्य-वर्णन में सदैव मातृत्व का ध्यान रखा है पर गुप्त जी उनका विस्तृत वर्णन करने में जरा भी नहीं हिचकते।[5] गुप्त जी ने इस वर्णन की निम्नांकित दो पंक्तियाँ तो रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों की कल्पना की सीमा का स्पर्श कर लेती है—

रुकने झुकने में ललित लंक लच जाती,
पर अपनी छवि में छिपी आप बच जाती ॥[6]

इस प्रकार तुलसी से प्रभावित होते हुए भी गुप्तजी कभी-कभी सामयिकता का अवलम्बन कर भक्तों की मर्यादा का अतिक्रमण कर गये हैं।

आर्य संस्कृति है कि पत्नी पति का और पति पत्नी का नाम न लें। तुलसी ने इस लोक मर्यादा का मानस में सर्वत्र निर्वाह किया है।[7] गुप्त जी ने भी यथाशक्ति यही नीति ग्रहण की है। पर तुलसी ने मानस में इंगितों से सीता के द्वारा राम को अपना पति सूचित कराकर जिस मर्यादा की पराकाष्ठा कर दी है वहाँ गुप्तजी ने सीता के मुख से राम को

---

१ (क) जगत जननि अतुलित छवि भारी ॥
—मा० १.२४८.२ (उ०)

(ख) सीता माता थीं आज नई धज धारे।
....
जन-मातृ-गर्वमय कुशल वदन भव-भावन।
—साकेत, पृ० १५६

२ कहा वैदेही ने "हे नाथ"
—साकेत, सर्ग २, पृ०४३

३ (क) राजकुमारि सिखावनु सुनहू।
—मा० २.६१.२ (पू०)

(ख) सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला।
—मा० ३.२४.1 (पू०)

४ प्रेयसी, किसके सहज संसर्ग से,
—साकेत, पृ० २३

५ अंचल-पट कटि में खोंसे, कछोटा मारे,
....
मौरों से भूपित कल्प-लता-सी फूली,
—साकेत, पृ० १५६-५७

६ साकेत, पृ० १५७

७ हां, एक स्थल पर विपत्ति में सीता ने राम का नाम अवश्य लिया है।
—द्रष्टव्य मा० ४.५.५

अपने देवर लक्ष्मण का ''ज्येष्ठ'' कहलाकर उस सौन्दर्य में थोड़ा व्याघात पहुँचा दिया है।[1] ऐसे तुलसी की मर्यादा का 'साकेत'' के राम में भी पर्याप्त पुट विद्यमान है। तभी तो उनका स्पष्ट शब्दों में कथन है—

जितने प्रवाह हैं, बहें—अवश्य बहें वे,
निज मर्यादा में किन्तु सदैव रहें वे।[2]

माता कैकेयी के मुख से अपने वनवास का समाचार सुनकर ''मानस'' के राम का कथन है कि—

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।[3]

''साकेत'' के राम भी प्रायः वही बात कहते हैं—

''अरे, यह बात है, तो खेद क्या है?
भरत में और मुझ में भेद क्या है?
करें वे प्रिय यहाँ निज कर्म-पालन।
करूँगा मैं विपिन में धर्म-पालन।[4]

कैकेयी के कलंक-मार्जन में तत्पर होकर तुलसी और गुप्त दोनों ने ही अपनी-अपनी रुचि और शक्ति का परिचय दिया है। तुलसी ने कैकेयी को देवमाया से मोहित बतलाकर उसके चरित्र की उज्ज्वलता अक्षुण्ण रखी। उन्होंने चित्रकूट में कैकेयी की आत्मग्लानि की चर्चा कर उसके चरित्र की उज्ज्वलता को उज्ज्वलतर बना दिया। राम के वन से अयोध्या लौटने पर तुलसी ने कैकेयी को अति लज्जित बतलाकर[5] उसके चरित्र के सारे कलंक मार्जित कर उसे उज्ज्वलतम रूप प्रदान किया है। गुप्तजी ने भी चित्रकूट की सभा में कैकेयी की ग्लानि को मुखरित कर मानस से साकेत का प्रभावित होना सिद्ध कर दिया है।[6]

---

१ (क) बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि।।
—मा० २.११७.६-७

(ख) गोरे देवर, श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं'' —साकेत, सर्ग ५, पृ० १०६, प० ५

२ साकेत, प० १६४

३ मा० २.४२.१-२

४ साकेत, पृ० ५७

५ प्रभु जानी कैकेयी लजानी।
—मा० ७.१०.१ (पू०)

६ युगयुग तक चलती रहे कठोर कहानी—
....
धिक्कार! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'' —साकेत पृ० १८०

(ख) पर महादीन हो गया आज मन मेरा,
....
करती है तुमसे विनय आज यह माता।
—साकेत पृ० १८३

तुलसीदास और गुप्त के वर्णनों में अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ पहले का वर्णन व्यंग्यात्मक और संक्षिप्त है वहाँ दूसरे का वर्णन अभिधात्मक और विस्तृत।

तुलसी के समान गुप्त ने भी वेदों के प्रति अद्‌भुत श्रद्धा व्यक्त की है।[1] उन्होंने भी तुलसी की तरह रामनाम की महिमा स्वीकार की है[2] और सगुण राम के समक्ष अलक्ष्य ब्रह्म की उपेक्षा की है।[1] जिस प्रकार तुलसी ने भरत के त्याग को राम-लक्ष्मण के त्याग से अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है उसी प्रकार गुप्त ने भी।[2] गीता[3] एवं मानस[4] के समान गुप्तजी ने भी भगवान का सगुण अवतार सज्जनों की रक्षा, दुर्जनों का संहार और भूभार भंजन के निमित्त ही होना माना है।[5] तुलसी की तरह गुप्त जी ने भी सगुण ब्रह्म के अवतार

---

१ बरनाश्रम निजनिज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥

—मा० ७.२०

उच्चरित होती चले वेद की वाणी,
गूँजै गिरि-कानन-सिन्धु-पार कल्याणी।

—साकेत, सर्ग ८, पृ० १६८

२ नाम लेत भवसिंधु सुखातीं।

—मा० १२५.४ (पू०)

जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे।
वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे।

—साकेत, सर्ग ८, पृ० १६७

३ जे ब्रह्म अज मद्वैत मनु भवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तब सगुन जस नित गावहीं॥

—मा० ७.१३.२१-२२

अलक्ष की बात अलक्ष जानें,
समक्ष को ही हम क्यों न मानें?

—साकेत, पृ० ३३५

४ (क) लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥

—मा० २ ३२६ २ ३

(ख) अवध को अपनाकर त्याग से,
वन तपोवन सा प्रभु ने किया।
भरत ने उनके अनुराग से,
भवन में वन का व्रत ले लिया॥

—साकेत, पृ० १९४

५ गीता, अ० ४, श्लोक ७-८

६ मा० १.१२१.६–१ १२१

७ हो गया निर्गुण सगुण-साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।
....
....
पापियों का जान लो अब अन्त है,
भूमि पर प्रकटा अनादि अनन्त है।

—साकेत, पृ० १२

के चरित्र को परमात्मा का नाट्य मात्र माना है ।[1] राम की निर्विकारता का वर्णन करते हुए मानसकार कहते हैं—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लेवनवासदुःखतः
मुखांबुज श्रीरघुनन्दनस्य मे सदास्तु सामंजुल-मंगलप्रदा ॥[2]

उसी तथ्य को साकेतकार ने यों व्यक्त किया है—

राम-भाव अभिषेक समय जैसा रहा,
वन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा ॥[3]

इस प्रकार गुप्त जी "रामचरितमानस" की भक्ति से अत्यधिक प्रभावित हैं। "साकेत" के षष्ठ सर्ग के प्रारम्भ में तुलसी के प्रति अपनी असीम श्रद्धा व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है कि मैं अपने को तभी कृतकृत्य मानूँगा जब मरने के समय मेरे मुख में सोना न भी हो पर तुलसी का एक पत्र अवश्य रहे ।[4]

इस श्लेषात्मक उक्ति से स्पष्ट है कि मरते-मरते भी गुप्तजी तुलसी के "मानस" के एक पन्ने (पत्र) का उच्चारण करते रहना चाहते थे।

१—हिन्दी-रामभक्ति-काव्य पर "मानस" की भक्ति के प्रभाव का सिंहावलोकन

वस्तुतः तुलसी परवर्ती हिन्दी रामभक्ति काव्य परम समृद्ध एवं विपुल हैं। अतएव उनमें से कतिपय प्रमुख रामभक्ति काव्यों पर ही संक्षेप में मानस की भक्ति के प्रभाव का दिग्दर्शन कराया जा सका है। ऊपर के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि तुलसी के समकालीन रामभक्ति-काव्य भी मानस की भक्ति के प्रभाव से अछूते नहीं हैं। जहाँ तक रसिक सम्प्रदाय के राम-भक्ति-काव्यों का प्रश्न है वे निश्चय ही कृष्ण-भक्ति-काव्यों से काफी प्रभावित हैं। उनमें राम और सीता साधारण नायक-नायिका की तरह सुन्दरियों के साथ अयोध्या की गलियों एवं सरयू नदी के किनारे, विहार, होली, रास आदि प्रेमपूर्ण शृंगारिक चेष्टायें करते दृष्टिगोचर होते हैं। पर फिर भी रसिक सम्प्रदाय के रामभक्त कवियों ने प्रायः तुलसी के "मानस" की कथा को ही संक्षेप अथवा विस्तार में अपना वर्ण्यविषय बनाया है। मानसकार की तरह वे भी अपनी कृतियों में स्थल-स्थल पर भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, गुरु-महिमा सत्य; क्षमा, दया, दान आदि के संबन्ध में अपने उद्गार प्रकट करते चले हैं और राम से संबंधित अयोध्या, सरयू, चित्रकूट, जनकपुर आदि पुण्य स्थानों का गुणगान कर अपनी भक्ति का परिचय प्रदान किया हैं। उनमें भी तुलसी की तरह ही भगवान् के नाम, रूप,

---

१ (क) रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं ।
—मा० ५ श्लो० १.३; ७.७२ (ख)

(ख) मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया ।
—साकेत, सर्ग ८, पृ० १६७

२ मा० २. श्लोक २

३ साकेत, पृ० ८८

४ साकेत, पृ० ११५—
तुलसी, यह दास कृतार्थ तभी-मुँह में हो चाहे स्वर्ण न भी,
पर एक तुम्हारा पत्र रहे, जो निज मानस कवि कथा कहे ।

लीला, धाम के लिए आग्रह और दीनता का स्वर है। यदि उनके पूर्व तुलसी जैसा समर्थ कवि राम की मर्यादा-भक्ति का इतने शक्तिशाली एवं प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिपादन न किये होता तो बहुत संभव था कि इस सम्प्रदाय में रामभक्ति का स्वरूप कृष्ण-भक्ति की तरह और भी अधिक रसिक रहता।

आधुनिक राम काव्यों में रामचरित उपाध्याय का "रामचरित-चिन्तामणि" (सन् १९२० ई०), मैथिलीशरण गुप्त का "साकेत" (सन् १९२९ ई०), अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" का "वैदेही वनवास" (सन् १९३९ ई०), डा० बलदेव प्रसाद मिश्र का "साकेत-संत" (१९४६ ई०), केदारनाथ मिश्र "प्रभात" का "कैकेयी" (१९५० ई०), बालकृष्ण शर्मा "नवीन" का "उर्मिला" (१९५७ ई०) आदि महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनके अतिरिक्त "राम की शक्ति पूजा" ("निराला"), "प्रदक्षिणा" एवं "पंचवटी" (मैथिलीशरण गुप्त) जैसी राम काव्य सम्बन्धी छोटी रचनाएँ भी काफी सुन्दर बन पड़ी हैं। ये सभी रचनाएँ खड़ी-बोली की हैं और इनमें आधुनिक सामाजिक एवं राजनीतिक विचार धाराओं का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है। इनमें प्रायः बुद्धिवादी दृष्टिकोण का प्राबल्य है और कदाचित् उसी के कारण अवतारवाद को कम महत्व दिया गया है तथा राम आदि को पूर्णतया मानव के रूप में चित्रित किया गया है। साथ ही, इन रचनाओं में पूर्ववर्ती राम-काव्य के उपेक्षित पात्रों को नायक-नायिका बनाने की प्रवृत्ति भी विद्यमान है। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में "तुलसी की भक्ति-भावना का सूत्रपात इस बीसवीं शताब्दी में रामचरित उपाध्याय के "रामचरित-चिन्तामणि", बलदेवप्रसाद मिश्र के 'कौशल किशोर' और 'साकेत संत', 'ज्योतिसी' के "श्री राम चन्द्रोदय" और मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में हुआ।"[1] इन आधुनिक राम काव्यों में भी "साकेत" का विशिष्ट स्थान है अतः प्रस्तुत परिच्छेद में विस्तार भय से खड़ी बोली के आधुनिक राम काव्यों में केवल "साकेत" पर ही "मानस" की भक्ति के प्रभाव का दिग्दर्शन कराया जा सका है। इतना तो निर्विवाद है कि सभी नक्षत्रों पर सूर्य के प्रभाव की तरह इन रामभक्ति की रचनाओं पर भी रामचरित मानस की भक्ति का चिरस्थायी प्रभाव है और इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि राम-साहित्य के आकाश में उपर्युक्त समस्त रचनाएँ तारागण मात्र हैं जो 'मानस" के प्रखर प्रकाश में कान्तिहीन एवं निष्प्रभ हो गयी हैं।

(२) भारतीय जन-जीवन पर "मानस" की भक्ति का प्रभाव

मानस की भक्ति-पद्धति के द्वारा जन जीवन को प्रभावित करने की ग्रंथकार की आकांक्षाएँ

तुलसी के रामचरितमानस एवं उसमें प्रतिपादित भक्ति का उनके समकालीन एवं परवर्ती भारतीय जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा इसकी चर्चा करने के पूर्व हम यह देख लेना चाहते हैं कि स्वयं ग्रंथकार ने अपनी भक्ति-पद्धति के द्वारा जन-जीवन पर किस प्रकार का प्रभाव डालने की आशा, आकांक्षा एवं संभावना व्यक्त की है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपना यह विश्वास प्रकट किया है कि उनकी इस कृति से सज्जन आह्लादित होंगे और

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४८४

उसका दुर्जन उपहास करेंगे।[१] कारण यह है कि सज्जन भगवान् के स्वरूप को समझते हैं और उनके चरित्र को सुनकर प्रसन्न होते हैं। तुलसी के ग्रंथ में एक ही विश्वविख्यात गुण यह है कि इसमें राम नाम[२] और राम प्रताप[३] का स्पष्ट चित्रण है। उस राम यश से परिपूर्ण उनकी कृति उसी प्रकार सर्वथा लोकप्रिय होगी जिस प्रकार मलय के सम्पर्क में आने वाले काष्ठ की भी लोग वन्दना करते हैं।[४] यहाँ तक तुलसी ने अपने ग्रन्थ तथा उसमें वर्णित भाव-धारा की चर्चा कर उसकी लोकप्रियता के कारणों का उल्लेख किया है। हरियश वर्णन से लाभ क्या है, तुलसी ने इसके उत्तर में कहा है कि उससे हरियश वर्णन कर्त्ताओं की वाणी सुफल और पवित्र होती है।[५] इससे यह व्यंजित होता है कि भगवान् का यह यशः कीर्त्तन पढ़ने और सुनने वालों की वाणी को सुफल और पवित्र करेगा। उन्होंने इस लोकप्रिय प्रबन्ध के महत्त्वपूर्ण गुणों का उल्लेख करते हुए कहा है कि उसमें सरलता और विमलता होने पर ही वह सज्जनों द्वारा आदृत होगी।[६] तुलसीदास ने इसीलिए मानस की भाषा सरल रखी है और भगवान् राम की विमल कीर्ति का उसमें कीर्त्तन किया है। तुलसी के कथन का सारांश यह है कि यदि किसी विमल कीर्त्ति का सरल भाषा एवं शैली में इस ढंग से वर्णन किया जाय जो अपनी सरलता से ग्रन्थकर्त्ता के शत्रु को भी वशीभूत कर सके तो यह अधिक लोकप्रिय होगी।[७] इससे स्पष्ट सिद्ध है कि अपनी सरस एवं सरल शैली का आशय ग्रहण कर तुलसी ने जन-मानस को मुग्ध एवं प्रभावित करने का प्रयत्न किया है। उन्हें यह पूर्ण विश्वास था कि जो इस कथा को अर्थात् मानस में वर्णित भक्ति को सप्रेम कहेंगे, सुनेंगे एवं सावधान होकर समझेंगे, वे कलिमल रहित सुमंगल भागी एवं रामचरण अनुरागी होंगे।[८] उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि तुलसी का एक महान् लक्ष्य भारतीय जनता को रामचरणानुरागी बनाना था और उन्हें यह पूर्ण विश्वास था कि मानस की यह कथा भारतीय जनता को भक्ति एवं कल्याण-दायिनी होगी।

राम का नाम कल्पवृक्ष तुल्य है और कलियुग में कल्याण का निवास है जिसका स्मरण करने से तुलसीदास भाँग से तुलसी बन गये।[९] उन्होंने स्वयं अपना उदाहरण उपस्थिति कर राम नाम के स्मरण से निकृष्ट का उत्कृष्ट होना सिद्ध किया है। पतित समाज को समुन्नत बनाने के लिये तुलसी ने मानस की रचना की थी और उन्हें विश्वास था कि उनका यह ग्रन्थ गिरते हुए जन-जीवन को उठाने में अवश्यमेव समर्थ होगा। एक स्थल पर तो उन्होंने इसके तिर-

---

१ मा० १.८ (उ०)
२ मा० १.१०.१५—एहि महँ रघुपति नामहँ उदारा।
३ मा० १.१०.७(उ)—रामप्रताप प्रगट एहि माहीं॥
४ मा० १.१० (क)
५ मा० १.१३.८
६ मा० १.१४ (क) पू०
७ मा० १.१४ (क)
८ मा० १.१५.१०-११; ७.१२६.१-३; ७.१२६
९ मा० १.२६

पत दिव्य गुणों का वर्णन किया है।[1] "रामचरितमानस" के अध्येताओं पर विघ्नों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि उन्हें राम की कृपा प्राप्त होगी।[2] वे मानस रूपी मानसरोवर में अवगाहन कर महाघोर तापत्रय से मुक्त होंगे।[3] उनका मन रूपी हाथी विषय रूपी जलते हुए जंगल में यदि पड़ भी गया हो तो इस ग्रंथ में वर्णित भक्ति-भावना रूपी मानसरोवर का आश्रय ग्रहण कर वह आह्लादित एवं सुखी ही होगा।[4] आगे चलकर तुलसी ने 'मंगलायतन' रामयश के प्रभाव से जन-जीवन में सदा उत्साह बने रहने की संभावना व्यक्त की है।[5]

तुलसी के समय में शैवों और वैष्णवों में भयंकर संघर्ष चल रहा था। उन्होंने अपने काव्य में वर्णित भक्ति-भावना को उदार बनाकर उस भयंकर संघर्ष का मूलोच्छेदन करने का सफल प्रयत्न किया। इसीलिए उन्होंने राम और शिव में अभेद प्रतिपादित कर उन दोनों को एक दूसरे का स्वामी तथा भक्त घोषित कर दिया।[6] यह एक महान प्रयत्न था जो आगे चलकर तुलसी की मनोकामना ही नहीं, आस्तिक हिन्दू-जगत का दृढ़ विश्वास बन गया। तुलसी ने रामचरितमानस में राम की सगुण-लीला का वर्णन किया है और इससे लोक-जीवन को अत्यधिक प्रभावित करने की आकांक्षा व्यक्त की है।[7] उन्होंने सगुण ब्रह्म के यशः कीर्तन से भक्तों के भवपार होने की बात कही है और अपना यह अटल विश्वास प्रकट किया है कि कृपालु राम 'जनहित' अर्थात् लोक संग्रह के लिए शरीर धारण करते हैं।[8] भावार्थ यह है कि राम का अवतार 'जनहित' के लिए होता है। अतएव उस अवतार का यशः कीर्तन जनता-जनार्दन को प्रभावित कर उसे सन्मार्ग पर तो लायेगा ही साथ ही लोक संग्रह की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करेगा।

तुलसी ने भरत के जिस भव्य चरित्र का चित्रण किया है, उसका प्रभाव भी जन-जीवन पर डालना उन्हें सर्वथा अभीष्ट है। तुलसी के भरत चरित्र-चित्रण के द्वारा मानव चरित्र में वह परिवर्तन लाना चाहा है जिसमें मानव-जीवन का परम पुरुषार्थ प्राप्त हो। वह परम पुरुषार्थ है—"सीताराम के चरणों में प्रेम" तथा 'सांसारिक विषय-रस से वैराग्य।'[9] अपने सरस काव्य से मानवता को प्रभावित कर इतना ऊंचा उठाने का लक्ष्य विश्व के किसी भी कवि का नहीं था और यह भी कहना कठिन है कि ऐसा कभी हो भी सकेगा। जीवात्मा

---

१ मा० १.३१.४-१.३२ (ख)

"निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

....

....

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित-हित बिसेषि बड़ लाहु॥"

२ मा० १.३९.५

३ मा० १.३९.६

४ मा० १.३५.८

५ मा० १.३६१

६ मा० १.१५.३-४; १.१०४.५-८; ४.३० (क); ६.२.६-६.२

७ मा० १.१२१,१-१.१२१

८ मा० १.१२२.१

९ मा० २.३२६

का नैतिक और आध्यात्मिक विकास अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचे, इसी लक्ष्य को लेकर तुलसी की कविता भरत के पावन चरित्र का चित्रण करती है।

प्रायः प्रत्येक काण्ड के अन्त में भगवान के यश को 'भवभेषज' या पापनाशक एवं कल्याणकारी कहकर तुलसी ने जनता को भक्ति की ओर उन्मुख कराने का प्रयत्न किया है।[1] नाम महत्व के प्रचार की भावना से राम-नाम को ही कलियुग में एकमात्र अवलम्ब कहा गया है[2] और भगवान् को उसी व्यग्रता से प्यार करने की बात कही गयी है जिस व्यग्रता से कामी नारी के प्रेम में तथा लोभी धन के संग्रह में तल्लीन रहता है।[3] इसका तात्पर्य यह है कि विश्व का लोक मानस परमात्मा प्रेम की प्राप्ति एवं अनुभूति के लिए सदैव सचेष्ट रहे और उसके अतिरिक्त किसी अन्य विषय में आसक्त होने के लिए उसे अवकाश न मिले। अन्ततः उत्तर काण्ड के अन्तिम संस्कृत श्लोक भगवान् के स्मरण से विज्ञान एवं भक्ति की प्राप्ति द्वारा संसार-पतंग की घोर किरणों से परित्राण की चर्चा कर कवि ने मानवता को परमात्मा-प्राप्ति की परिपूर्ण प्रेरणा प्रदान की है। कवि ने मानव-समाज के गार्हस्थ्य-जीवन को सुखी बनाने के लिए मानस के दिव्य चरित्रों की अवतारणा की है और समग्र विश्व पर प्रभाव डालकर उसे भक्त, विरक्त एवं मुक्त करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। उन्होंने राम कथा को विमुक्त, विरक्त और विषयी तीनों प्रकार के जीवों के लिए परमोपयोगी घोषित किया है और उसके द्वारा उन्हें क्रमशः भक्ति, सद्गति एवं सम्पत्ति की प्राप्ति को सुलभ बतलाया है।[4] इस प्रकार तुलसी ने जनता के समक्ष अपनी सदाचारपूर्ण भक्ति का प्रचार कर उससे प्रभाव ग्रहण करने की आकाँक्षा एवं विश्वास प्रकट किया है। यथार्थतः वे भारतीय आध्यात्मिक साधना के प्रवाह में पूर्णतः निमज्जित हो चुके थे और जन-जन के जीवन को आध्यात्मिक साधना में निष्णात कर देने की ही उनकी अन्तिम कामना थी। हमें अब यह देखना है कि कवि की यह कामना भारतीय जन-जीवन को प्रभावित करने के संबंध में कहाँ तक सफल हुई है।

३—''मानस'' की भक्ति का वैयक्तिक-साधना पर प्रभावः—

किसी भी भक्त-महाकवि का काव्य लोक-जीवन को दो प्रकारों से प्रभावित करता है। प्रथम प्रकार यह है कि उस काव्य के प्रभाव से उसका पाठक आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित कर अपने चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है और उसे प्राप्त करता है। उसकी साधना एकाकी और एकान्त स्थल में होती है। उसे आत्म-कल्याण की जितनी चिन्ता होती है उतनी लोक-कल्याण की नहीं। ऐसा साधक अपने गुरु वाक्यों के स्थान पर उन कवियों के उपदेशों को ही स्वीकार कर लेता है और किसी शून्य स्थान में शम-दम की सहायता से नियम-पूर्वक चिन्तन, मनन एवं ध्यान करता रहता है। ऐसी साधना मुक्ति और भुक्ति दोनों ही के लिए की जाती है। दूसरा प्रकार यह है कि लोक-कल्याण के लिए समग्र राष्ट्र-

---

१ मा० १.३६१; ३.४६ (क)—४६ (ख); ४.३० (क)—३० (ख); ५.६०; ६.१२१ (क)—१२१ (ख)

२ मा० ६.१२१ (ख)

३ मा० ७.१३० (ख)

४ मा० ७.१५.५

व्यापी भजन, पूजन यजन या चिन्तन किया जाय। व्यक्तिगत उपासना का साधक जहाँ आत्म-कल्याण के चिन्तन एवं सिद्धि की लालसा रखता है वहाँ लोक-संग्रही एवं सार्वभौम कल्याण का चिन्तन करने वाला उपासक सर्वजनहिताय तपस्या एवं साधना करता है। तुलसी का "मानस" इन दोनों प्रकार की साधनाओं को लेकर प्रणीत हुआ है। तुलसी जहाँ एक ओर "मानस" के प्रणयन का कारण "स्वान्तः सुखाय"[1] घोषित करते हैं वहाँ दूसरी ओर अपनी कृति से संसार पतंग की घोर किरणों से जगत् के परित्राण की कामना भी रखते हैं।[2] उनकी दृष्टि में यदि किसी की कीर्ति, कविता अथवा सम्पत्ति, गंगा के समान संसार के सभी प्राणियों के लिए हित-कारिणी नहीं हुई तो उसका होना न होने के समान है।[3] यही नहीं, भगवान राम का यश वे इसलिये नहीं करते हैं कि अपने देश के ही नहीं बल्कि समग्र संसार के स्त्री-पुरुषों की कामनाओं को भगवान शंकर पूर्ण करें।[4] इतना ही नहीं वे तो प्रत्येक नर-नारी के लिए परम पुरुषार्थ का एक सरल मार्ग-निर्माण कर रहे हैं जिस पर चलने से "भव रस" से "बिरति" और सीताराम के चरणों में प्रेम हो।[5] अतः तुलसी की साधना जितनी ही व्यक्तिगत-कल्याण के लिए है, उतनी ही लोक एवं विश्व के कल्याण के लिए भी। हम यहाँ पहले प्रकार की साधना के ऊपर पड़ने वाले "मानस" की भक्ति के प्रभाव का विवेचन करके दूसरे प्रकार की साधना पर पड़ने वाले प्रभाव का उल्लेख करेंगे।

भारतवर्ष में ऐसे असंख्य साधक हैं जो "मानस" के उपदेशों को गुरुवाक्य मानकर उनके अनुसार संयम और नियमपूर्वक जीवनयापन करते हैं। उनमें से कोई स्त्री, पुत्र, पति, धन सम्पत्ति, जीविकोपार्जन, रोगनाश या किसी न किसी प्रकार की सिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं। वे मानस पाठ को अपना साधन बनाकर अपनी रुचि के अनुकूल अनेक भोग्य वस्तुओं की प्राप्ति करने के लिए संयम और नियम के साथ साधन करते हैं। कोई-कोई भक्ति की भावना त्यागकर भगवान के साक्षात् दर्शन अथवा उनकी भक्ति-प्राप्ति करने के लिए इसका अवलम्बन ग्रहण किया करते हैं। कोई-कोई अणिमा, गरिमा आदि सिद्धियों की उपलब्धि के लिए भी मानस-पाठ एवं भगवन्नाम जप को अपना साधन बनाते हैं।[6] इस प्रकार सभी तरह की पारमार्थिक एवं लौकिक अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए लोग "मानस" की भिन्न-भिन्न चौपाइयों एवं दोहों के अनुष्ठान का प्रयोग किया करते हैं।[7] कुछ लोग साल के दो नवरात्रों—अर्थात् आश्विन एवं चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से लेकर नवमी तक में समग्र "मानस" का पाठ कर जाते हैं। उत्तर भारत के ग्रामों तक में इस तरह के पाठ करने वाले अनेक पुरुष और नारियाँ मिलती हैं। सती-साध्वी, विधवाओं एवं शान्त, सज्जन विधुरों तथा ब्रह्मचारियों का तो यह एक परमावश्यक एवं पुनीत कर्त्तव्य माना जाता है। विषयासक्त जीवन को भी विषय-प्रवाह से दूरकर साधना-सम्पन्न बनाने में मानस की

---

१ मा० १. श्लो० ७, १.३१, ४, ७. अन्तिम श्लोक १. तृतीय चरण
२ मा० ७. अन्तिम श्लोक २. चतुर्थ चरण
३ मा० १.१४.९
४ मा० ४.३० (क)
१ मा० २.३२६
२ मा० १.२२.४
३ गीता-प्रेस. कल्याण, मानसांक प्रथम खण्ड, पृ० १७-१९

भक्ति ने अनुपम कृतकार्यता प्राप्त की है। तुलसी के पहले इस प्रकार के साधक अपनी व्यक्तिगत साधना के लिए ऋग्वेद, वाल्मीकीय रामायण, गीता, एवं गायत्री को साधन मानते थे, किन्तु तुलसी के "रामचरितमानस" के प्रणयन के पश्चात् व्यक्तिगत साधना के लिए जितना इस ग्रन्थ का प्रचार हुआ है उतना हिन्दी-भाषी प्रान्तों में तो किसी अन्य ग्रन्थ का नहीं हो सका है। आज वेदों या पुराणों या संस्कृत के स्रोतों के स्थान पर तुलसी के मानस की स्तुतियां—"जय जय सुरनायक जन सुखदायक ...."[१] या "भय प्रगट कृपाला दीन दयाला ...."[२] या "नमामि भक्त वत्सलं। ...."[३] या अन्य का ही अत्यधिक प्रचलन है। इस प्रकार की साधना-भूमि भारतवर्ष में यों तो उस प्रकार प्रत्येक ग्राम है किन्तु प्रधानतया ऐसे केन्द्र अयोध्या, काशी, प्रयाग, हरिद्वार, जनकपुर, चित्रकूट आदि तीर्थस्थान हैं। इन तीर्थ स्थानों के अतिरिक्त मानस की साधना के लिए अनेक साधना-स्थलों का प्रतिवर्ष नव-निर्माण भी हो रहा है। जैसे—अयोध्या एवं काशी का मानस-मन्दिर। इन मन्दिरों की संगमरमर की दीवारों पर प्रचुर धन व्यय करके आदि से अन्त तक समस्त "रामचरितमानस" की पंक्तियां टंकित हैं। "मानस-मन्दिर" काशी में तो तुलसी की एक भव्य मूर्ति भी स्थापित है। इनके अतिरिक्त सतना में एक राम वन है जहाँ मानसरोवर का निर्माण कर क्रमशः उसके चारों घाटों पर तुलसी और सन्त, भारद्वज एवं याज्ञवल्क्य, शिव तथा पार्वती और गरुण एवं कागभुशुण्डि के मन्दिर हैं। इसके अतिरिक्त भक्त प्रवर हनुमान का भी वहाँ एक विशाल मन्दिर है जो यहाँ के व्यक्तिगग साधकों का आश्रय है। इस प्रकार भारत के प्रत्येक ग्राम, नगर एवं वन में भगवान राम के भक्त हैं जो तुलसी द्वारा प्रदर्शित भक्ति-मार्ग को ग्रहण कर राम-नाम के जप एवं मानस के पाठ से अपने व्यक्तिगत उद्देश्य को सिद्ध करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी ने इस बात की सम्भावना को ध्यान में रखकर ही कहा था कि भगवन्नाम का जप साधक लोग किया करते हैं और अणमादि की प्राप्ति कर सिद्ध हो जाते हैं।[४] न केवल सिद्धि के साधक वरन् संकटों से आक्रान्त आर्त्तजन भी राम-नाम का जप या "रामचरितमानस" का पाठ अपने को संकटों से मुक्त करने के लिये किया करते हैं।[५] मानस-पाठ और राम-नाम-जप निष्काम एवं सकाम[६] दोनों भावों से ही किये जाते हैं। आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी ये चारों प्रकार के भक्त मानस का पाठ अपने-अपने

---

१ मा० १.१८६.१-१६

२ मा० १.१९२.९—१.१९२

३ मा० ३.४.१—२४

४ मा० १.२२४

५ मा० १.२२.५

६ मा० ७.१५.३—जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख सम्पत्ति नाना विधि पावहिं॥
मा० ७.१२९.५—मन कामना सिद्ध नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा।
मा० १.१९.३-५; १.२६.५

उद्देश्यों की सिद्धि के लिए करते हैं। उनकी भक्ति-भावना की गहराई के अनुसार उन्हें फल भी प्राप्त होते हैं। इस तथ्य की पुष्टि बहुतों के व्यक्तिगत अनुभव से हो जाती है।[1]

मानस के पाठ कई प्रकार से और कई विधियों से किये जाते हैं। पाठों के आह्णिक, नवाहण, मासिक एवं वार्षिक आदि भेद हैं। कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न सम्पुटों के साथ वर्षों इसके अखंड पाठ भी होते रहते हैं। लोग अपनी व्यक्तिगत सफलता पर भी रामचरित-मानस की पूजा एवं पाठ किया करते हैं। इस मानस-पाठ से पाठकर्त्ताओं को अपने उद्देश्यों की सिद्धि का तो विश्वास होता ही है, इसके अतिरिक्त उनकी अज्तिकता और सांस्कृतिक जीवन पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार का मानस-पाठ न केवल राम भक्तों या वैष्णवों के द्वारा ही किया जाता है बल्कि शैवों एवं शक्तों के द्वारा भी। आज प्रायः अधिकांश शैव लोग शिव की स्तुति करते समय 'मानस' के शिव संबंधी श्लोकों[2] का प्रयोग करते हैं और "नमामीशमीशान निर्वाण रूपं। .... "[3] को ही पढ़ा करते हैं। शिव की नगरी काशी में जहाँ गोस्वामी जी का एक समय जबर्दस्त विरोध हुआ था वहीं के विश्वविख्यात विश्वनाथ मन्दिर में आज यह स्तुति अंकित भी है। रामोपासक वैष्णवों के लिए तो 'मानस' के समान कुछ भी प्रिय नहीं है।[4] इसके पाठ में वर्ण का भी कोई बन्धन नहीं है। ब्राह्मण से शूद्र तक जो भी रामचरितमानस पढ़ने में समर्थ हैं, सो अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार दिन या रात में समय निकालकर अपने-अपने सुविधाजनक स्थान पर उसका पाठ करते हैं और उसके रस से कभी भी तृप्त नहीं होते। सच है—"रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस विसेष जाना तिन्ह नाहीं।"[5] ऐसे भक्त जहाँ कहीं और जिस समय भी रामचरितमानस की पंक्तियों को अपने भक्तिपूरित कंठों से सस्वर पाठ प्रारम्भ कर देते हैं, वहाँ का सम्पूर्ण वातावरण भक्तिमय बन जाता है।

तुलसी के मानस और उसमें वर्णित भक्ति से प्रभावित होकर ही काशीनरेश महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायणसिंह ने रीवाँ नरेश महाराज रघुराज सिंह से 'राम स्वयंवर' ग्रंथ की रचना करायी थी।[5] इस प्रकार के प्रभाव से अन्याय ग्रंथों की भी रचनाएँ हुई हैं, जिनकी चर्चा इसी परिच्छेद में पहले ही हो चुकी है।

---

४ "................... मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि मुझको केवल मानस-रामायण से ही सब कुछ प्राप्त हुआ है। .... मैं बार-बार यह कहते नहीं अघाता कि आज तक मुझको जो कुछ प्राप्त है वह मानस की ही कृपा प्राप्त हुआ है।"

—कल्याण (गीता प्रेम), वर्ष १३, संख्या १, पृ० ५१ में पं० श्री रामवल्लभा-शरण जी महाराज के निबन्ध "मानस" जीवन का प्रकाश है" से उद्धृत।

—द्रष्टव्य—कल्याण, वर्ष १३, संख्या १, पृ० ८९३ "रामायण से शान्ति" एवं पृ० ८९४ "मानस भक्तिभाव का समुद्र ही है।" इत्यादि लेख।

१ मा० १. श्लो० २; २. श्लो० १, ३. श्लो० १-६, श्लो० २-३ ७.श्लो० ३

२ मा० ७.१०८.१-१८

३ मा० ७.१३०.३

४ मा० ७.५३.१

५ राम स्वयंवर, पृ० ९६८ पं १३—पृ० ९७० पं० १०—

"जौन हेतु ग्रन्थहि निर्मादा। तौन हेतु अब सुनहु सुजाना ॥——
पूरण भयो ग्रन्थ सुख आगर। राम स्वयंवर नाम उजागर ॥"

मानस की व्याख्या एवं प्रचार करने वाले सज्जन अपनी-अपनी योग्यता से अनुकूल ख्याति प्राप्त कर प्रतिष्ठा एवं अर्थ प्राप्त करते हैं। बहुत से कथावाचक या व्यास तो मानस की कथा के पाठ से ही अपने परिवार का भरण-पोषण और अपनी जीविका का निर्वाह कर रहे हैं। आज भी समाज में बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो मानस का नित्य विधिवत परायण किए बिना अन्न-जल नहीं ग्रहण करते। माधुर्योपासक साधकों के जीवन पर भी रामचरित-मानस की भक्ति का अपरिमित प्रभाव पड़ा है। वे "मानस" को साक्षात् भगवान राम का वांङ्मय अवतार मानते हैं और उसे अनेक वस्त्रों में आवेष्टित करके श्रद्धापूर्वक रखते हैं। महात्मा रामाजी ऐसे ही माधुर्योपासकों में अग्रगण्य थे। वे अपने आराध्य भगवान राम को भावावेश में "नौ से बबुआ" कहा करते थे और उनके विवाह की ही झाँकी प्रस्तुत किया करते थे। आज भी इनके वयोवृद्ध शिष्य महात्मा रमाशंकरशरण जी अयोध्या में विद्यमान हैं और इनके द्वारा संस्थापित "विअहुती भवन" में अभी भी प्रायः प्रत्येक महीने के कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को सोताराम विवाह की मधुर झाँकी प्रस्तुत की जाती है। प्रत्येक वर्ष अगहन शुक्ल पंचमी को तो इस विवाहोत्सव का आयोजन विराट रूप में होता है और उस समय सन्तों को एक बहुत बड़ा प्रीति-भोज (भण्डारा) भी दिया जाता है। "विअहुती भवन" के मन्डप में मानस के विवाह प्रकरण के बहुत से पद्य टंकित हैं और विवाह के अवसर पर भी मानस के विवाह प्रकरण का सस्वर पाठ किया जाता है।[1] उस समय साधकों एवं भक्तों द्वारा निर्मित राम-विवाह के बहुत से अन्यान्य पद भी गाये जाते हैं जो प्रायः मानस के बालकाण्ड बालकाण्ड में वर्णित सीताराम-विवाह प्रकरण के आधार पर ही रचित हैं।[2]

---

१ मा० १.२८७.१–१.३२७.१७

२ (क) रचे रुचिर बर बन्द निवारे। मनहुँ मनोभवँ फंद सँवारे ॥

—मा० १.२८९.१

फँद फंद पर फंद फंद फँदनि फँदि आये,
लसत तहाँ रचि रुचिर फँदनि बरु फाँदनि पाये,
चितवनि तकनि निहारनि निरखनि मंगन मन मान ॥
जोइ मान्यो सोइ भयो मनो भव फन्द सँवारे सान ॥
इत्यादि।

माण्डपोत्सव, पृ० ९५-९५

(ख) कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं ॥
....
....
प्रमुदित मुनिन्ह भावँरो फेरीं। नेग सहित सब रीति निबेरीं ॥

—मा० १.३२५.१-७

चारों दुलहा देहिं भामरिया ए। संग सोहती दुलहो नागरिया ए।
श्याम गौर गौर श्यामा चारों जोड़ा जोड़िया,
हरे हरे होत चहुँ ओरिया ए चारों० ॥
शिरनि पै सोहैं मणिन मौर मौरिया ॥

शेष अगले पृष्ठ पर........

हिन्दू-धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के साधकों के द्वारा देश के भिन्न-भिन्न भागों में मानस की पढ़ाई एवं परीक्षा का भी प्रबन्ध किया गया है। इस सम्बन्ध में गीताप्रेस, गोरखपुर की "रामायण परीक्षा समिति" का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। देश के अन्य भागों में भी इसके केन्द्र हैं। इसी तरह एक "मानस-पत्र व्यवहार विद्यालय" "मानस-संघ", रामवन सतना में हैं। योगिराज स्वामी रणछोरदासजी महाराज ने "सदगुरु-सदन" राजकोट (गुजरात में "मानस-विद्यालय" की स्थापना की है। इनके अतिरिक्त देश के भिन्न-भिन्न भागों में भी इसी तरह "मानस" की पढ़ाई एवं परीक्षा होती है और उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को "मानस-रत्न", "मानस-शास्त्री", "मानस-आचार्य", "मानस-महारथी" आदि की उपाधियाँ भी प्रदान की जाती हैं। अयोध्या में अनेक ऐसे स्थान हैं, जहाँ 'मानस" पर प्रवचन ही नहीं होते परन्तु नियमित रूप से उसकी कथा एवं पढ़ाई भी होती है।

हिन्दू-धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के साधकों पर ही नहीं, अनेक विदेशी विद्वानों

शेष पाद टिप्पणी—

दामिनी की छवि छीनै छोरिया, ये चारो० ॥
रतनारी कजरानी अजब अँखरिया।
लखितहि करे बेखबरिया ए चारों० ॥
अंचल चँदरिया में परी है गठरिया।
बाँधे हैं कि बूटी बस करिया ए चारो० ॥
नवरंग मणिन की सुपली सोहरिया।
लावा छिरियावैं भरि भरिया ए चारों० ॥
उमगि उमगि गावैं आलिगन गरिया।
सुख सरसत वेसुमरिया ए चारों० ॥
जयति जयति जय जय होत सोरिया।
सुर करैं सुमन की भरिया ए चारों ॥
परैं मणि खम्भनि में दम्पति छहरिया।
जागें जोति जगर महरिया ए चारों० ॥
मानो रति पति जानि पितु महतरिया।
प्रगटि दुरत बेरि बेरिया ए चारों० ॥
फूलि न समाति लखि मोदिया किंकरिया।
लली लाल लखनि लजोरिया ए चारों० ॥

—श्री मैथिली विवाह पदावली, भाँवरी, पद ४५ पृ० ३७-३८

(ग) मा० १.३२७ १५-१८

लहकौरि करत पिय प्यारी।
जनक नगर की अलीं चतुर सब गावत रस की गारी।
....
....
प्रेम हार निज निज घातैं करि पकर्यो अवध विहारी।
लब सिय ललकि भौंह करि बाँको मन हरिगहि सुकुमारी ॥

—वही लौहकरि, पद ५४, पृ० ५१-५२

एवं साधकों के व्यक्तिगत जीवन पर भी "मानस" की सदाचारपूर्ण विशुद्ध भक्ति-भावना ने अद्भुत प्रभाव डाला है। यहाँ तक कि हिन्दू-धर्म के कट्टर बिरोधी कुल में अवतीर्ण अनेक अहिन्दू भी "मानस" की भक्ति के प्रभाव से परम साधु एवं रामभक्त बन चुके हैं। इस संबंध में अयोध्या के रामभक्त मुसलमान फकीर "मोहन साईं" का नाम अग्रगण्य है। "रामचरित-मानस" की जन्मभूमि तुलसी-चौरा पर लिखित इनकी कविता भी अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।[1] मानस तत्त्वान्वेषी पं० रामकुमारदास जी ने अपने "मानस-महत्त्व और प्रचार" नामक निबन्ध में प्रसिद्ध मुसलमान कवि रहीम की एक हिन्दी एवं दो फारसी कविताएँ उद्धृत की हैं, जिनसे खानखानाँ पर "मानस" की भक्ति के पर्याप्त प्रभाव का पता चलता है।[2] "मानस" की भक्ति-भावना ने हिन्दी-भाषी प्रान्तों के साधु-सन्तों तथा गृहस्थों के वैयक्तिक जीवन को जितना अधिक प्रभावित किया है, उतना अधिक न तो कोई ग्रन्थ, न कोई साधना-मार्ग और न कोई महात्मा ही कर सका है। प्रत्येक हिन्दू के हृदय पर कुछ-न-कुछ "मानस" की भक्ति का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में अवश्य है।

"रामचरितमानस" की भक्ति का राष्ट्रीय जीवन पर प्रभाव"

"मानस" की भक्ति के राष्ट्रीय जीवन पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों की मीमांसा करने के लिए कुछ उपशीर्षक बना लेना हमारे लिये सुविधाजनक प्रतीत होता है। राष्ट्र के अंगों में धर्मोपदेशक, शासक, शिक्षित वर्ग, कृषक एवं श्रमजीवी, लोकनेता, साहित्यिक इत्यादि का महत्त्वपूर्ण स्थान सुरक्षित है। साथ ही राष्ट्रीय जीवन में संस्कार, लोकोत्सव, व्रत, पूजा-पाठ, तीर्थ एवं देव-मन्दिर, चलचित्र तथा आकाशवाणी इत्यादि का भी अपना स्थान है। अतः इन्हीं के सहारे विभिन्न शीर्षक बनाकर यहाँ पर इस अतिगहन विषय के विवेचन का प्रयास किया जा रहा है।

(क) धर्मोपदेशकों पर

जिस समय तुलसी का अविर्भाव हुआ उस समय भारतीय सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की स्थिति सर्वथा चिन्तनीय थी। चतुर्दिक चिन्ता एवं अशान्ति का साम्राज्य छाया हुआ था। तत्कालीन समाज के समक्ष कोई उच्च आदर्श नहीं था। स्वेच्छाचारिता बढ़ गयी थी। वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा समाप्त प्राय थी। प्रजा पतित एवं पाखण्डरत हो रही थी। शान्ति और सत्य के स्थान पर अशान्ति और कपट का एकाधिपत्य हो चुका था। साधु

---

१ अवध की भूमि पवित्र सब है,
पवित्रतम उसमें तुलसी चौरा।
तवाफ करते हैं रोज जिसका,
विरंचि, नारद, महेश गौरा॥
इत्यादि।
—मानसमणि, मणि १, आलोक १, पृ० ३०-३४

२ मानस मणि, मणि २, आलोक ५, पृ० १९६

कष्टमय जीवन यापन कर रहे थे और असाधु गुलछर्रें उड़ा रहे थे।[1] कष्ट, दरिद्रता एवं भुखमरी के भीषण प्रवाह में सामान्य जन-जीवन ऊब-डूब कर रहा था। किसान को खेती करने के साधन उपलब्ध नहीं थे। भिखारी को भीख नहीं मिल रही थी। न वणिक् का व्यापार ही चलता था और न नौकर को नौकरी ही मिलती थी। लोग जीविकाविहीन एवं चिन्ताग्रस्त दशा में क्षीण होकर एक दूसरे से कह रहे थे कि कहां जाएं और क्या करें?[2] क्षुधा की ज्वाला से प्रपीड़ित होकर पेट को भरने के लिए व्यक्तिगत, सामाजिक एवं धार्मिक सदाचारों को तिलांजलि देकर लोगों के सामने वेद-शास्त्र एवं बेटा बेटी तक को भी बेचने की नौबत आ चुकी थी। रामचरितमानस के उत्तर कान्ड में काकभुशुंडि के पूर्ववर्ती जीवन में अनुभूत कलियुग-वर्णन तत्कालीन जन-मन की मलिनता का स्पष्ट परिचायक है। वस्तुतः वह तुलसी के समकालीन अनुभव पर ही आधारित है।

इसी तरह उस समय वेदों, पुराणों एवं शास्त्रों का अध्ययन ठप पड़ा था रहा था और निरक्षर भट्टाचार्य संत नामधारी साधु भक्ति के नाम पर वेदों, पुराणों एवं शास्त्रों की निन्दा कर अपने मत का प्रचार कर रहे थे।[3] शूद्र, ब्राह्मणों से बराबरी के लिए वाद-विवाद कर रहे थे और वे ब्रह्मज्ञानी बनने का मिथ्या दम्भ भरते थे।[4] अनाधिकार चर्चा, भक्ति एवं साधुता का दम्भ इतना बढ़ रहा था कि स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवा दूसरी बात नहीं करते।[5] इसी समय योग मार्गीगोरख पंथी साधु अपने चमत्कार, करामात एवं सिद्धि से लोगों को भ्रमित एवं आतंकित कर सीधे-सादे प्रेमपूर्ण भक्ति-मार्ग को पंकिल बना रहे थे जिससे विशुद्ध भाव एवं प्रेमपूरित भक्ति-भावना जन-जीवन से दूर भागती जा रही थी।[6] नाना सम्प्रदायों के प्रादुर्भाव से भक्ति का यथार्थ स्वरूप बाधित हो रहा था।

---

१ आश्रम बरन धरम बिरहित जग लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पापरत अपने अपने रंग रई है।
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति खल बिलसत हुलसति खलई है।।

विनयपत्रिका, पद १३९, पंक्ति ७-१०

२ खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को न चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहें एक एकन सों कहाँ जाई, का करी।

कविताबली, उत्तरकांड, पद ९७

३ साखी, सबदी, दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरुपहि भगत कलि निन्दहि वेद पुरान।। —दोहावली, दो० ५५४

४ बादहिं शूद्र द्विजन सन हम तुमते कछु घाटि।
जानहि ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहि डाटि।।

— दोहावली, दो० ५५३
—मा० ७.९९ (ख)
—मा० ७,९९(क)

५ ब्रह्मग्यान विनु नारि-नर कहहि न दूसरि बात।

६ गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु,
नियम-नियोगतें सो कलि ही छरो-सो है।

—कवितावली, उत्तरकाण्ड, ८४, तृतीय चरण

लोगों ने भक्ति की दुर्दशा कर रखी थी और उसका लोक विरोधी विकृत स्वरूप जोर पकड़ता जा रहा था।[1] शैवों, वैष्णवों एवं शाक्तों की साम्प्रदायिक संकीर्णता परिधि का अतिक्रमण कर रही थी और उनका पारस्परिक विरोध पराकाष्ठा पर था। कर्म, धर्म, भक्ति, योग, ज्ञान आदि एक दूसरे से बहुत दूर पड़ गये थे और सबों में एकांगदर्शिता का आधिक्य था। तुलसी के आविर्भाव के पूर्व भारत की विषम परिस्थिति की चर्चा करते हुए आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने यों लिखा है—"हम्मीर के समय में चारणों का वीरगाथा काल समाप्त होते ही हिंदी-कविता का प्रवाह राजकीय क्षेत्र से हटकर भक्ति पथ और प्रेमपथ की ओर चल पड़ा। देश में मुसलमान साम्राज्य के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने पर वीरोत्साह के सम्यक् संचार के लिए वह स्वतंत्र क्षेत्र न रह गया; देश का ध्यान अपने पुरुषार्थ और बल-पराक्रम की ओर से हटकर भगवान् की शक्ति और दया-दाक्षिण्य की ओर गया। देश का वह नैराश्य काल था जिसमें भगवान् के सिवा और कोई सहारा नहीं दिखाई देता था। रामानन्द और वल्लभाचार्य ने जिस भक्ति रस का प्रभूत संचय किया, कबीर और सूर आदि की वाग्धारा ने उसका संचार जनता के बीच किया। साथ ही कुतबन्, जायसी आदि मुसलमान कवियों ने अपने प्रबंध-रचना द्वारा प्रेमपथ की मनोहरता दिखाकर लोगों को लुभाया। इस भक्ति और प्रेम के रंग में देश ने अपना दुःख भुलाया, उसका मन बहला।

भक्तों के भी दो वर्ग थे। एक तो भक्ति के प्राचीन भारतीय स्वरूप को लेकर चला था; अर्थात् प्राचीन भागवत-संप्रदाय के नवीन विकास का ही अनुयायी था और दूसरा विदेशी परंपरा का अनुयायी, लोक धर्म से उदासीन तथा समाज-व्यवस्था और ज्ञान-विज्ञान का विरोधी था। यह द्वितीय वर्ग जिस घोर नैराश्य की विषम स्थिति में उत्पन्न हुआ, उसी के सामंजस्य-साधन में संतुष्ट रहा। उसे भक्ति का उतना ही अंश ग्रहण करने का साहस हुआ जितने की मुसलमानों के यहाँ भी जगह थी। मुसलमानों के बीच रहकर इस वर्ग के महात्माओं का भगवान् के उस रूप पर जनता की भक्ति को ले जाने का उत्साह न हुआ, जो अत्याचारियों का दमन करने वाला और दुष्टों का विनाशकर धर्म को स्थापित करने वाला है। इससे उन्हें भारतीय भक्तिमार्ग के विरुद्ध ईश्वर के सगुण रूप के स्थान पर निर्गुण रूप ग्रहण करना पड़ा, जिसे भक्ति का विषय बनाने में उन्हें बड़ी कठिनता हुई।"[2]

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि किन कारणों से तुलसी के पूर्ववर्ती एवं समसामयिक धर्मोपदेशकों ने श्रुति-स्मृति प्रतिपादित भागवत धर्म की अवहेलना की। उन्होंने परमात्मा के अस्तित्व के ऊपर तो बल दिया पर उन्हें निर्गुण एवं निराकार ही बनाये

---

१ श्रुति सम्मत हरिभक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहि परिहरहिं बिमोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥

—मा० ७.१०० (ख)
—दोहावली, दो० ५५५

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भये सदग्रन्थ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पन्थ॥

—मा० ७.९७ (क)

२ पं० रामचंद्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १-२

रखा। यह सत्य है कि गौतम-बुद्ध, महावीर, गोरखनाथ, कबीर, जायसी इत्यादि महापुरुष और महात्मा थे, किन्तु उन्होंने श्रुतिप्रतिपादित धर्म का विरोध किया। उनमें से किन्हीं ने तो ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार किया और किन्हीं ने उसका सगुण एवं साकार होना असत्य एवं असंभव बतलाया। कुछ लोगों ने तीर्थ, व्रत एवं सगुणोपासना का जी भर उपहास किया और हिन्दू-धर्म की मान्यताओं पर आक्रमण करने की यथाशक्ति चेष्टा की। बालक तुलसी द्वार-द्वार भिक्षाटन करते हुए अपने धर्म एवं संस्कृति को इस प्रकार क्षत-विक्षत होते हुए देख रहे थे। उनके परम ज्ञानी गुरु ने उन्हें शैशवावस्था में जिस रामचरित का उपदेश दिया था उसका बार-बार स्मरण कर और अपनी तपस्या तथा चिन्तन शक्ति से उसे आत्मसात् कर वे चमत्कृत हो उठे और उन्होंने अपने धर्म पर होने वाले उस आक्रमण को समझा। इससे वे तिलमिला उठे और उसके विरोध की वाणी को मुखरित कर लोक-धर्म के यथार्थ स्वरूप को प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने रामचरितमानस का प्रणयन किया। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है—"संसार जैसा है, वैसा मानकर उसके बीच से एक एक कोने को स्पर्श करता हुआ, जो धर्म निकलेगा वही लोक-धर्म होगा। जीवन के किसी एक अंग मात्र को स्पर्श करने वाला धर्म लोक-धर्म नहीं।"[१]

तुलसी ने नाना सम्प्रदायों की लोकविरोधी-भावना पर बड़ी निर्ममता के साथ कठोर प्रहार कर परम्परागत सनातन धर्म के अनुकूल प्रेमपूर्ण भक्ति के यथार्थ स्वरूप को समाज के समक्ष उपस्थित किया। उनकी दृष्टि में भक्ति का मार्ग तो सीधा-सादा भाव एवं प्रेम का मार्ग है। इसमें करामात, चमत्कार, अलौकिक ज्ञान एवं सिद्धि आदि के लिए कोई अवकाश नहीं है। अतः उन्होंने सभी प्रकार के आडम्बरों की भर्त्सना करते हुए भक्ति की प्राप्ति के लिए मन, वचन एवं कर्म की निर्मलता तथा सरलता पर बल दिया है।[२] भक्ति तो संसार के समस्त प्राणियों के लिए अन्न और जल की भाँति सुलभ है।[३] यही कारण है कि हिन्दू जनता में मुसलमान पीर फकीरों द्वारा प्रसारित अंध विश्वासों की उन्होंने तीव्र भर्त्सना की है।[४] केवल निर्गुणवाद का स्थान-स्थान पर उन्होंने बड़े जोश के साथ खण्डन किया है।[५] इसी प्रकार उन्होंने वर्णाश्रम धर्म के विरोधियों का उपहास किया है।[६] काशी[७]

---

१ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २४

२ सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति।।
-- दोहावली, दो० १५२

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।
—मा० ५.४४.५

३ अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माँह।।
—दोहावली, दो० ८० (उ०)

४ दोहावली, दो० ४९६

५ मा० १.११४.७-१.११६; दोहावली, दो० १९, २५।

६ मा० ७.९९(ख); ७.१००.६

७ मा० ४. सो० १, विनयपत्रिका, पद २२

अयोध्या,[1] प्रयाग,[2] चित्रकूट,[3] रामेश्वर[4] आदि तीर्थ स्थानों की महिमा का कीर्त्तन कर उन्होंने उनका माहात्म्य अक्षुण रखा है। वे भोजन[5] और आचरण[6] की शुद्धता के अत्यंत पक्षपाती हैं। उन्होंने राम को मनुष्य मानने वालों की अज्ञता पर गहरा क्षोभ प्रकट किया है[7] और अपने लिए राम-प्रेम ही परम कर्तव्य बतलाया है चाहे वे मनुष्य हों या परमात्मा।[8] यदि राम मानव हैं और मानव होकर भी उन असंख्य गुणों के आधार हैं जो वाल्मीकि आदि महर्षियों ने बतलाये हैं तो भी तुलसी राम के प्रेम से विमुख नहीं होना चाहते, क्योंकि उतने अधिक दिव्य गुणों से युक्त होने पर मनुष्य ईश्वरीय तेज के अंश के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता, जैसाकि गीता में कहा गया है।[9] इसलिए राम के 'महीस' होने पर भी वे अपना सौभाग्य समझते हैं।

तुलसी ने भगवान राम के सौन्दर्य, शक्ति एवं शील का अत्यन्त मनोहर एवं प्रभावोत्पादक रूप भारतीय जन मानस के समक्ष रखकर एक अद्भुत एवं अलौकिक कार्य किया है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में—"भगवान का जो प्रतीक तुलसीदास जी ने लोक के सम्मुख रखा है, भक्ति का जो प्रकृत आलम्बन उन्होंने खड़ा किया है, उसमें सौन्दर्य, शक्ति और शील, तीनों विभूतियों की पराकाष्ठा है। सगुणोपासना के ये तीन सोपान हैं जिन पर हृदय क्रमशः टिकता हुआ उच्चता की ओर बढ़ता है।"[10]

तुलसीदास के इस रामचरितमानस के प्रचार-प्रसार के साथ ही साथ धर्मोपदेशकों की वृत्ति बदल चली। कोरा निर्गुणवाद शिथिल पड़ गया। वर्णाश्रम धर्म की भर्त्सना करने वाले संकुचित होने लगे। तीर्थों और व्रतों पर से लोकश्रद्धा हटाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। राम को मानव कहने वालों की बात का कोई मूल्य नहीं रहा। हाट-बाट, गाँव-नगर और जंगल-पहाड़ सब राम-नाम से गुंजित हो गये। सब प्रकार की धार्मिक संकीर्णताओं एवं भेद-भावों की जड़ें उखड़ गयीं। भारतीय जनता में एक नवजीवन का संचार हुआ और उसमें नये साहस, नये बल, नयी आशा, नयी उमंग और नयी स्फूर्ति का प्रवाह फूट पड़ा। अब किसी भी धर्मोपदेशक को साहस नहीं हुआ कि वह वैदिक धर्म के प्रतिकूल आवाज बुलन्द करे। यदि कोई कुछ कहने का दुस्साहस भी करता था तो जनता उसे अनसुनी कर देती थी। हिन्दू-धर्म के प्रचारकों और व्याख्याताओं की धूम मच गयी और

---

१ मा० ६.१२०.९; ७.४.२-७; ७.२९.८ (पू०)
२ मा० २.१०५.२-२.१०६.१; ६.१२०.८
३ मा० २.१३२.३-२.१३३ ४
विनयपत्रिका, पद २३, २४
४ मा० ६.३.१-२
५ मा० ७.९८ (क)
६ दोहावली, दो० ५४७-५४९
७ मा० १.११४.८-१.११४; ६.२६.१-६; ६.३३.८-६.३३ (क)
८ दोहावली, दो० ९१
९ यद् यद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥
—श्रीमद्भगवद्गीता, अ० १०, श्लो० ४१
१० गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ५३-५४

उनके हाथ में रामचरितमानस की एक प्रति अवश्य दिखाई पड़ती थी। इस ग्रन्थ ने अनेक साधु-महात्मा, योगी, साधक और धर्मोपदेशक उत्पन्न किये। बहुत-सी रामायण मण्डलियाँ स्थापित हुयीं। राम जन्मोत्सव का महत्त्व अत्यन्त बढ़ गया और प्रायः सर्वत्र रामलीलाएँ होने लगीं। ऐसे अवसरों पर धर्मोपदेशक मानस-धर्म की व्याख्या कर जनता को आल्हादित एवं प्रभावित करने के लिये प्रवचन करने लगे। इस प्रकार तुलसी के मानस की भक्ति ने धर्मोपदेशकों के हृदय, मस्तिष्क एवं नैतिकता पर अमिट छाप डाली है।

(ख) राजचक्र या शासकों पर

यों तो भारतीय शासकों के दरबार में कवि प्राचीनकाल से ही रहते आये थे, किन्तु मुगल सम्राट अकबर की उदार नीति के कारण उसके उच्च पदस्थ सरदार भी कवियों की संगति रखते थे और स्वयं भी कविता करते थे। उदाहरणार्थ ब्रह्म या बीरबल, तानसेन, गंग, रहीम आदि के नाम लिये जा सकते हैं। लोगों ने यह समझना प्रारम्भ कर दिया था कि हिन्दी भी एक महत्वपूर्ण भाषा है और उसका साहित्य अत्यन्त गम्भीर एवं महान है। उस समय हिन्दी कविता अकबरी दरबार में पहुँच चुकी थी और उसने अकबर के दरबारियों को बहुत कुछ प्रभावित कर लिया था।[१] तुलसी का प्रभाव रहीम तक पहुँच चुका था[२] और भक्ति-मार्ग विशेषतः सगुण भक्ति-मार्ग से केवल दरबारी ही नहीं उनके शासक भी कुछ-न कुछ परिचित हो चुके थे। अकबर ने यह समझ लिया था कि हिन्दी-भाषा, हिन्दी-साहित्य, हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने पर ही उसका साम्राज्य भारत में सुदृढ़ हो सकता है। तुलसी ने जिस भक्ति और चरित्र पर बल दिया था उसका प्रभाव रहीम आदि दरबारियों और शासकों पर विशेष रूप से पड़ा था। तुलसी द्वारा वर्णित रामराज्य को महिमा से स्वयं अकबर और उसके दरबार के देशी राजे-महाराजे भी बहुत कुछ प्रभावित हुये होंगे। जिस रामराज्य की महिमा का वर्णन तुलसी ने बड़े ठाठ से किया है उसका स्वरूप बहुत से दरबारियों और शासकों के समक्ष आया होगा और उन्होंने यथाशक्ति उसे अपनाने का प्रयत्न भी किया होगा। गोस्वामी जी ने तत्कालीन मुगल-शासकों और उनके दरबारी राजाओं-महाराजाओं के उत्पात का भी दिग्दर्शन कराया है।[३] उन्हीं की ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा था—

> **"गोड़ गवाँर नृपाल महि जमन महा महिपाल।**
> **साम न दाम न भेद कलि केवल दण्ड कराल॥[४]**

---

१ डा० सरयूप्रसाद, अग्रवाल, अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि पृ० २५-३२ (अकबरी दरबार में हिन्दी का सम्मान)।

२ उनके "रामचरितमानस" के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है—
"रामचरितमानस विमल सन्तन जीवन प्रान।
हिन्दुआन को वेद सम जमनहि प्रगट कुरान॥"
मानस-मणि, मणि २, आलोक ५, पृ० १९६, पं० रामकुमारदास जी लिखित "मानस-महत्त्व और प्रचार" निवन्ध से उद्धृत।
कल्याण के रामायणांक पृ० २२९ में श्री वालक रामजी विनायक ने भी यह दोहा लिखा है।

३ मा० १.१८३.६-८

४ दोहावली, ५५६

वस्तुतः तुलसी ने रामराज्य के आदर्श को सामने रखकर ही यह बात कही थी अन्यथा अकबर काल का शासन सर्वथा भ्रष्ट नहीं था। न केवल हिन्दी वरन् संस्कृत के लेखकों का भी वहाँ आदर होता था और उन्हें दरबार में सम्मानपूर्वक स्थान दिया जाता था। आदर्श राजा राम की शासन-पद्धति से प्रभावित होकर अकबर ने सब धर्मों के साथ समान व्यवहार करने की नीति अपनायी थी। कहा जाता है कि किसी नरहरि बन्दी जन की कविता को सुनकर उसने गोवध बन्द करा दिया था।[1] जिस राजा की प्रजा के हृदय में राम का निवास हो उसे अधर्म करने की प्रेरणा भी नहीं हो सकती। इसलिए अकबर का दरबार शासन-कार्य को सुचारू रूप से संचालित करता रहा और तुलसी जैसे महात्माओं के उपदेशों से लाभान्वित होकर अपनी प्यारी प्रजा को सानंद रखने में प्रयत्नशील रहा।

आज के भी शासक यदि राम और भरत के आदर्श को अपने सामने रख कर त्याग एवं सेवा भाव से शासन का संचालन करें तो निश्चय ही स्नेह की एक ऐसी पारिवारिक व्यवस्था स्थापित हो सकती है जिसमें शासक, शासक न होकर परिवार के ही पिता, भाई आदि सदस्य के रूप में सम्मानित हो सकता है।

(ग) शिक्षित-वर्ग पर—

"रामचरितमानस" की भक्ति का सर्वाधिक प्रभाव शिक्षित हिन्दू जनता के जीवन पर पड़ा है। प्रत्येक वर्णमाला जानने वाला मनुष्य "रामचरितमानस" के पठन-पाठन में दत्त-चित्त हुआ। उसकी तरह-तरह की टीकाएँ लिखी जाने लगीं और भागवत के समान इसकी कथा का घर-घर प्रचार हो गया। आगे चलकर मुद्रण यंत्रों का आविष्कार हो जाने से इसकी असंख्य प्रतियाँ बिकने लगीं। मुस्लिमकाल तक तो मानस का प्रचार पाठशालाओं में नहीं हुआ था, किन्तु अंग्रेजों के आते ही मानस पाठ्य-पुस्तक के रूप में अनेक परीक्षाओं में भी स्वीकृत हुआ। ज्यों-ज्यों विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ती जा रही है त्यों-त्यों इसके अध्ययन-अध्यापन का प्रचार-प्रसार होता जा रहा है। हिन्दू-धर्म और संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कम पढ़े लिखे लोगों के लिए या विदेशियों के लिए इससे बढ़कर उत्तम ग्रन्थ कोई अन्य नहीं है। इसलिए हिन्दू-भक्तों एवं साहित्यिकों के अतिरिक्त उदारहृदय मुसलमान एवं ईसाइयों ने भी इसे अपनाया है। उन्होंने इसे पढ़कर जो उद्गार व्यक्त किये हैं उनसे यह प्रतीत होता है कि रामचरितमानस ने उन्हें अप्रभावित नहीं छोड़ा है।[2] इसकी भक्ति-भावना, साहित्यिकता एवं सामाजिक जीवन पर इसके सुखद प्रभाव से वे सर्वथा विस्मय-विमुग्ध हैं। संसार की प्रायः प्रत्येक भाषा में मानस का अनुवाद हो चुका है। और यह बाइबिल की तरह ख्याति प्राप्त कर चुका है। चाहे धर्म की

---

१ आचार्य शुक्ल, हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० १६६ तथा
रामनरेश त्रिपाठी, कविता-कौमुदी (भाग १), पृ० ८३

२ द्रष्टव्य, "तुलसी-दर्शन" -डा० बलदेव प्रसाद मिश्र, पृ० १७-२१;
साहित्य-सन्देश, भाग १८, अंक ६, दिसम्बर, १९५६ में
प्रो० रामप्रकाश अग्रवाल का निबंध "गोस्वामी तुलसीदास
और डा० ग्रियर्सन", पृ २३१-२३५

दृष्टि से, चाहे दर्शन की दृष्टि से, चाहे साहित्यिक या सांस्कृतिक दृष्टि से कोई, मानस का अध्ययन क्यों न करे, उसको यह अद्भुत आनंद एवं ज्ञान प्रदान करने वाली वस्तु है। सच पूछिये तो संसार के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में इसकी गणना है और सारे संसार का शिक्षित-वर्ग एक स्वर से इसके इस महत्व को स्वीकार करता है। तुलसी के रामचरितमानस में कई विशेषताएं हैं। यह केवल भक्तिपरक ग्रन्थ ही नहीं है प्रत्युत एक उत्तम महाकाव्य भी है। इसमें आदर्श मानव के जीवन का अनुकरण किया गया है। अतः इसे सभी प्रेमपूर्वक अपनाते हैं। आज की भारतीय बहू-बेटियाँ भी केवल "रामचरितमानस" का पाठ करने के लिए नागरी वर्णमाला सीखती हैं।

(घ) कृषकों तथा श्रमजीवियों पर—

धर्मोपदेशक, शासक एवं शिक्षित वर्ग के लोग या तो प्रायः नगरों में निवास करते हैं या उनसे नियमित संबंध संस्थापित किये रहते हैं। इनके अतिरिक्त जो भारतीय जनता है वह विशुद्ध ग्रामवासिनी है। ग्रामवासिनी जनता के प्रधानतः दो भेद किये जा सकते हैं- कृषक तथा श्रमजीवी। कृषकों का जीवन बहुत कुछ राममय होता है। यदि वर्षा नहीं होती है, तो वे राम को पुकारते हैं। यदि अधिक होती है तो उससे रक्षा करने के लिए वे राम ही की शरण में जाते हैं। यदि कृषक शिक्षित है, अथवा शिक्षित न होने पर भी गाँव की राम-कथा में सम्मिलित होता है तो मानस की चौपाइयों का गान करते हुए अपना कृषि-कार्य किया करता है। यदि उसके परिवार में कोई अप्रिय घटना घट जाती है तो वह यह कहते हुए संतोष धारण करता है कि—

सो न टरइ जो रचइ बिधाता ॥[1]

या

सो सबु सहिअ जो देउ सहावा ॥[2]

इस तरह वह बहुत से मानस के मार्मिक दोहे-चौपाइयों को कंठस्थ किये रहता है और जीवन के विभिन्न अवसरों पर उनका उच्चारण, मनन एवं चिन्तन कर संतोष की सांस लेता है।[3] "रामचरितमानस" की कथा तो आबाल-वृद्ध-बनिता सब की जिह्वा पर रहती है और जन्म-मरण, विवाह-शादी, यज्ञोपवीत आदि जीवन के सारे संस्कारों में उसके गीत मुखरित होते रहते हैं। खेतों में, खलिहानों में, वनों और बागों में, मठों और मन्दिरों में मानस की चर्चा अहर्निश चलती रहती है। इस प्रकार मानस की कथा, उसकी चौपाइयों तथा उनके आधार पर रचित गीत प्रत्येक कृषक परिवार के सदस्यों के मन-मन्दिर में पूर्ण-प्रेम-प्रतिष्ठा के साथ विराजमान रहते हैं। 'मानस' के संसर्ग से ही हमारे देश के देहाती किसान, किसी भी अन्य देश के किसानों से अधिक सच्चरित्र एवं सुसंस्कृत हैं।

श्रमिक वर्ग में अभी शिक्षा का पूरा-पूरा प्रचार नहीं है फिर भी मानस की रामकथा

---

१ मा० १.९७.६ (उ०)
२ मा० २.२४६.६ (उ०)
३ मा० १,१५६ (ख); १.२६१.२-३; २.६२.४; २ १७१; ४.३७; ५.५८; ६.१६ (ख); ७.१११.१६ इत्यादि।

से अपरिचित नर-नारी इस वर्ग में भी उत्तर भारत में कोई कदाचित ही मिलेगा। उनके जीवन में भी राम और मानस की कथा सर्वथा ओत-प्रोत रहती है। अन्तर केवल इतना ही है कि कृषकों के जीवन में जहाँ चौपाइयाँ अधिक उच्चरित होती रहती हैं वहाँ श्रमिकों के जीवन में बहुत ही कम।

कृषक तथा श्रमिक वर्ग के ग्रामीण छात्र भी अपने वातावरण से प्रभावित होकर मानस की भक्ति से बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण करते रहते हैं। संध्या होते ही प्रत्येक बैठक पर दीप जलने के साथ ही कुछ-न-कुछ समय तक "रामचरितमानस" का सस्वर पाठ होता रहा है। भोजन के पश्चात कुछ युवक इकट्ठे होकर श्रद्धा, प्रेम एवं भक्तिपूर्वक "रामचरितमानस" का गायन ढोल-मजीरे के साथ करते हैं। इस गायन के श्रवण से भक्त ग्राम वृद्धों की आत्माएँ आह्लादित एवं पुलकित हो जाती हैं। गायकों एवं श्रोताओं का सारा दिन का श्रम भी गायन एवं श्रवण से सहज ही मिट जाता है। आज भी लाखों ऐसे देहाती हैं जो निरक्षर होने के बावजूद, सुन-सुनकर और गोल में गा-गा-कर -'रामचरितमानस" की बहुत-सी पंक्तियों को कण्ठाग्रह किये हुए हैं। कभी-कभी वे इन पंक्तियों को अपने जातीय गीतों में मिलाकर भी जमात बाँधकर गाते और नाचते हैं। कदाचित् "मानस" गायन के उद्देश्य से ही निर्मित हुआ है।

इसका "गावउँ"[१] और "गावहिं"[२] पद भी इसी तथ्य की ओर इंगित करता है। वस्तुतः 'तुलसीदास के चेतनामय "रामचरितमानस" के अभाव में किसानों का जीवन जड़वत् और शुष्क बन जाता।"[३] आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "आज तो हम फिर झोपड़ों में बैठे किसानों को भरत के "भायप-भाव" पर, लक्ष्मण के त्याग पर, राम की पितृभक्ति पर पुलकित होते हुए पाते हैं, वह गोस्वामी जी के ही प्रसाद से।........
....

गोस्वामी जी ने "रामचरित-चिंतामणि" को छोटे-बड़े सब के बीच बाँट दिया जिसके प्रभाव से हिन्दू-समाज यदि चाहे—सच्चे जी से चाहे–तो सब कुछ प्राप्त कर सकता है।"[४]

(ड) लोक नेताओं पर

लोकनेता का कर्त्तव्य है—लोक कल्याण पर दृष्टि रखकर स्वयं कार्य करना एवं अपने राष्ट्र या समाज के लोगों से काम कराना। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को प्रारंभ करते हुए महात्मा गाँधी "गीता" के साथ साथ "मानस" की भी सदैव दुहाई देते रहते थे। उनकी दृष्टि में भारत में यदि कोई ग्रन्थ झोंपड़ियों से महलों तक में स्थान पा सका है, वह तुलसीदास कृत रामायण है।[५] वे इसे 'भक्ति-मार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ"[६] मानते थे।

---

१ मा० १.१२.६
२ मा० १.३८.१
३ गाँधीजी की सूक्तियाँ पृ० ८५
४ गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३४-३५
५ गाँधीजी की सूक्तियाँ, पृ० ८५
६ वही, पृ० ८४-८५ तथा कल्याण, मानसाँक प्रथम, पृ० ५२—
"रामचरितमानस से श्रद्धा की प्राप्ति" निबंध से उद्धृत।

उन्होने अपनी प्रतिदिन की प्रार्थना में "मानस" के दोहे-चौपाइयों को प्रमुख स्थान दिया था।[1] यथार्थतः "रामचरितमानस" प्रधानतया भक्तिपरक ग्रन्थ होने पर भी जीवनोपयोगी अनेक विषयों को स्पर्श करता है। वह एक गम्भीर राजनीतिक ग्रन्थ भी है। चित्रकूट की सभा में स्वयं महाराज जनक, महामुनि वशिष्ठ, भरत एवं राम के साथ जनकपुर एवं अयोध्या के सभी मंत्री, नीतिज्ञ, एवं सारी प्रजा भी थी, किन्तु इस घोर राजनीतिक संकट से परित्राण का मार्ग कौन निकाल सका? निस्संदेह राम और भरत के अलौकिक त्याग ने ही इस समस्या का सुखद एवं सुन्दर समाधान प्रस्तुत किया। तुलसी ने इस प्रसंग में राम[2] और भरत[3] के मुख से जो कुछ कहलवाया है वह सर्वथा महत्त्वपूर्ण एवं विश्व-कल्याणकारी है। राम और भरत के इस संवाद में राजनीति, समाजनीति एवं धर्म सबका सार तत्त्व समाविष्ट हो गया है। वस्तुतः तुलसी के राजनीतिक कौशल का मर्म है—जनता के समक्ष राम-राज्य का आह्लादपूर्ण चित्रण और कलियुगी शासन के विकृत स्वरूप का चित्रण। आखिर महात्मागाँधी से लेकर छोटे-बड़े सभी नेताओं ने इस नीति से भिन्न आचरण कहाँ किया है? उन्होंने ब्रिटिश-शासन को शैतानी शासन कहा और जी भरकर उसकी बुराइयों का पर्दाफाश किया। साथ ही, उन्होंने भावी कांग्रेसी शासन को रामराज्य की संज्ञा देकर ब्रिटिश-सत्ता के प्रतिकूल एक अदम्य क्रान्ति की उत्पत्ति की। तुलसी ने "मानस" के लंका कांड में जिस धर्म-रथ[4] का उल्लेख किया है, उसका मिलान महात्मा गाँधी के जीवन से सहज ही किया जा सकता है। वस्तुतः उन्होंने भी उसी रथ पर बैठकर विजय प्राप्त की थी। इस तरह "रामचरितमानस" एक ऐसा महान् क्रान्तिकारी ग्रन्थ है जो पददलित राष्ट्र को अपने ऐक्य, साहस और सदाचार के बल पर अत्याचारियों का विध्वंस कर जाग्रत होने की प्रबल प्रेरणा प्रदान करता है। यही कारण है कि महात्मा गांधी,[5] महामना

---

१ मा० २.१२७—२.१३१

२ मा० २.२६४.६—२.२६४—

"राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी॥
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार संकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥

मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु॥

३ मा० २.२६६.६—२.२६६—

"निज सिर भारु भरत जियँ जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥
करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायस आपन नीका॥
....
....

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब॥"

४ मा० ६.८०.५-११

५ गाँधीजी की सूक्तियाँ, पृ० ८४-८५
कल्याण, मानसाँक प्रथम, पृ० ५२, "रामचरितमानस से श्रद्धा की प्राप्ति" नामक निबन्ध।

मालवीय,[1] देशरत्न राजेन्द्रप्रसाद.[2] सरीखे भारतीय लोकनेता गण "रामचरितमानस" से प्रभावित होते रहे हैं। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के आलोक में मेरा दृढ़ विश्वास है कि लोक नेतृत्व की दिशा में प्रयत्नशील इस कोटि के व्यक्तियों के लिए यह ग्रन्थ सदैव अक्षय प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

(च) साहित्यिकों पर

साहित्यिक एवं भक्त दोनों में एक बात में साम्य है। वे दोनों ही अतीन्द्रिय आह्लाद के अन्वेषण में तल्लीन रहते हैं। इसीलिए साहित्य से उत्पन्न होने वाले आह्लाद को "ब्रह्मानन्द सहोदर" कहा जाता है। साहित्य में जो आह्लाद उत्पन्न होता है, उसके साधन तीन हैं—वस्तु, पात्र एवं रस। रामचरितमानस की कथावस्तु में, उसके पात्रों में और उसमें सन्निविष्ट रसों में इतना अधिक अह्लाद है जो प्रत्येक सहृदय प्राणी को अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। साहित्यिक आह्लाद के अतिरिक्त रामचरितमानस में आध्यात्मिक अह्लाद की अनुभूति इसीलिए होती है कि उसके नायक एवं नायिका इस चराचर सृष्टि के सर्वस्व हैं और उनमें सौन्दर्य, शक्ति एवं शील की पराकाष्ठा है। सच पूछिये तो "मानस" में साहित्यिक आह्लाद एवं भक्तिजन्य आह्लाद दूध-चीनी की तरह एक दूसरे से सर्वथा घुलमिल गये हैं। इसीलिये साहित्यिक आह्लाद मात्र के लिए इसके अध्ययन करने वाले भी अन्ततः कुछ-न-कुछ भक्तिरस में पगे बिना नहीं रह पाते।

यथार्थतः तुलसी की सम्पूर्ण कृतियों में "रामचरितमानस" का ही सर्वाधिक प्रचार है। देश-विदेश के अधिकांश साहित्य-रसिकों को इसने अपने सौन्दर्य पर मुग्ध किया है और सबों ने अपने-अपने ढंग से इस पर सारगर्भित आलोचनाएँ प्रस्तुत की हैं।[3] बहुत से तुलसी साहित्य के अधिकारी विद्वानों ने इसका पाठ-संशोधन किया है और बहुत से सन्त-विद्वानों ने इस पर विभिन्न प्रकार की टीकाएँ, भाष्य एवं लेख लिखकर इसके आन्तरिक भावों को अनेक प्रकार से अभिव्यक्त करने का स्तुत्य प्रयास किया है और आज भी कर रहे हैं। काव्य-रसिकों, विद्वानों, सन्तों एवं मानस-तत्वान्वेषी पंडितों के बीच में कभी-कभी तो "मानस" की एक-एक चौपाई या एक-एक दोहे पर घंटों, दिनों एवं महीनों शास्त्रार्थ तथा सत्संग चलते रह जाते हैं। इसी परिच्छेद में पहले ही यह दिग्दर्शन कराया जा चुका है कि तुलसी के परिवर्ती कवियों ने किस प्रकार "रामचरितमानस" से भाव ग्रहण किए और वे आज तक करते जा रहे हैं।

हिन्दी में "रामचरितमानस" को लेकर ही अनेक सभा-समितियों के मुख्य-पत्रों के रूप में पत्रिकाएँ प्रकाशित हुआ करती हैं। इस सम्बन्ध में मानस संघ, रामवन, सतना से "मानस-मणि", भोपाल से "तुलसीदल" श्री सत्यनारायण तुलसी मानस मन्दिर, वाराणसी से "मानस-मयूख" एवं रामनगर (चम्पारन), बिहार से प्रकाशित "मानस-सन्देश" के नाम

---

१ दृष्टव्य, कल्याण, मानसाँक प्रथम, पृ० ५२, महामना मदन मोहन मालवीय लिखित "मानस" के द्वारा "अनुपम सुख और शान्ति" नामक निबंध।

२ वही, पृ० ५४, बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी लिखित "रामायण से धर्म और अध्यात्मविद्या का विस्तार" नामक निबन्ध।

३ साहित्य-सन्देश, भाग १८, अंक ६, दिसम्बर १९५६, पृ० २३१-२३५

विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जो पत्र सीधे "मानस" से सम्बन्धित न भी हैं, उनमें भी समय-समय पर "मानस" की भक्ति के विभिन्न अंगों पर विवेचन छपा करते हैं। गीता-प्रेस गोरखपुर के "कल्याण" ने तो अपने पत्र का विशेषांक ही "मानसांक" के नाम से सन् १९३८ ई० में प्रकाशित किया था। जुलाई सन् १९३० ई० में प्रकाशित उसके "रामायणांक" में भी अनेकानेक निबन्ध "मानस" से सम्बन्धित थे। यहाँ से प्रायः जितने भी विशेषांक निकलते हैं, उनमें "मानस" की भक्ति से सम्बन्धित कुछ न कुछ निबन्ध रहते ही हैं।

तुलसी की जन्म-तिथि या मृत्यु-तिथि को प्रायः समग्र हिन्दी-भाषी भारत के स्कूलों, कालेजों एवं साहित्यिक संस्थाओं में "तुलसी-जयन्ती" बड़े धूम-धाम से मनायी जाती है। ऐसी जयन्ती न केवल श्रावण शुक्ल तीज या सप्तमी को ही वरन् उससे एक पक्ष आगे-पीछे तक चलती रहती है और उनके विवरण हिन्दी के प्रायः सभी तथा अंग्रेजी के भी कतिपय पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं। तुलसी-साहित्य को लेकर विश्वविद्यालयों में भिन्न-भिन्न प्रकार के महान् शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत किये गए हैं और आज भी किये जा रहे हैं। तुलसी-साहित्य का अधिकारी विद्वान हिन्दू-धर्म एवं संस्कृति का पूर्ण ज्ञाता माना जाता है और लोग उससे आशा करते हैं कि वह समग्र तुलसी पूर्ववर्ती साहित्य के विवेचन-विश्लेषण की क्षमता रखता है। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि तुलसी-साहित्य का ज्ञान और उसमें श्रद्धा रखने वाले साहित्यिक उच्चकोटि के भक्त ही हुआ करते हैं।

(छ) संस्कारों पर

प्रत्येक राष्ट्र या जाति के लोगों के प्राचीन काल से ही अपने-अपने संस्कार होते आये हैं। यों तो भारतीय राष्ट्र में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन एवं आदिवासी सभी सम्मिलित रूप से रहते हैं और कुछ न कुछ प्रत्येक के संस्कारों का पारस्परिक आदान-प्रदान होता रहता है तथापि प्रत्येक धर्मानुयायी के निजी संस्कार भिन्न-भिन्न ढंग के हुआ करते हैं। इस भारतीय राष्ट्र में हिन्दुओं की संख्या बहुत अधिक है और वर्णानुकूल उनके संस्कार भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। हिन्दू-संस्कारों का सम्बन्ध प्रायः ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों से ही होता है। यों तो संस्कारों के अनेक भेद हैं, पर आज के द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) उन सभी संस्कारों द्वारा संस्कृत नहीं होते। कुछ संस्कार जैसे विवाह[1] एवं श्राद्ध[2] आदि की चर्चा तो साक्षात् वेद में भी मिलती है। संस्कारों का सूत्रात्मक एवं क्रमबद्ध वर्णन पारस्कर, कात्यायन एवं आश्वलायन आदि के गृह-सूत्रों में प्राप्त होता है। आगे चलकर इनका विशेष विस्तृत श्लोकबद्ध वर्णन मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति एवं अन्यान्य स्मृतियों में मिलता है। महाकाव्यकार अपने नायकों के संस्कारों का वर्णन करते हुए

---

१ ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त ८५, मन्त्र २०-२७;

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मयापत्याजरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

—ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त ८५, मन्त्र ३६

२ शुक्ल-यजुर्वेद संहिता, अ० २, मंत्र २९-३४; अ० १९, मंत्र ४५-४६
अथर्ववेद के अठारहवें काण्ड में तो सम्पूर्ण २८३ मंत्र श्राद्ध के ही हैं।

इनमें से कतिपय महत्वपूर्ण का उल्लेख कर देते हैं। "रामचरितमानस" एक महाकाव्य है और उसमें उसकी कथा बड़ी शीघ्रता के साथ कही गयी है। इसलिये उसमें कुछ संस्कारों का उल्लेखमात्र ही हुआ है। जैसे—नान्दीमुखश्राद्ध[१], जातकर्म[२], नामकरण[३], चूड़ाकरण[४] एवं यज्ञोपवीत[५] इत्यादि। "मानस" के बालकाण्ड में विवाह-संकार का मार्मिक एवं सविस्तार वर्णन किया गया है।[६] वहीं पर नव-विवाहित राम के अद्भुत सौन्दर्य का भी बड़ी मनोहर शैली में एकान्त रमणीय चित्रांकन हुआ है।[७] संयोग से दशरथमरण के अवसर पर तुलसी ने भरत द्वारा किये गये दशरथ के अन्त्येष्टि[८] एवं श्राद्ध-संस्कार[९] का भी संक्षिप्त वर्णन कर दिया है। वस्तुतः राम का विवाह-वर्णन शुभ, प्रिय एवं उल्लासपूर्ण होने के कार। भक्त तुलसी के हृदय को अत्यधिक आकृष्ट कर सका है। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि उनको विवाह-संस्कार का वर्णन स्वभाव से ही प्रिय था। उन्होंने अपने दो छोटे खण्ड-काव्यों "जानकीमंगल" एवं "पार्वती-मंगल" में राम-सीता एवं शिव-पार्वती के विवाह का क्रमशः नितान्त रमणीय वर्णन किया है। "पार्वती-मंगल" में तो तुलसी ने भारतीय ललनाओं से आग्रह किया है कि वे इन छन्दों को अपने गले का हार बनावें।[१०] यह सत्य है कि भारतीय कुल-ललनायें तुलसी के उन पद्यों के रूप में तो नहीं परन्तु अपनी-अपनी प्रान्तीय बोलियों के गीतों के रूप में अनेक संस्कारों के अवसर पर राम-सीता के संस्कारों का उल्लेख करती हैं और उनसे तुलसी का नाम भी सम्बद्ध कर दिया करती हैं। तुलसी ने राम को अयोध्यामात्र का राम न रहने देकर सम्पूर्ण देश का राम बना दिया है। राम का प्रभाव इतना बढ़ा है कि प्रत्येक शिशु तथा वर में राम, वधू में सीता, पिता में दशरथ और माता में कौशल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा की मूर्ति आँकी जाने लगी है। उपर्युक्त संस्कारों के अतिरिक्त उन्होंने "रामललानहछू" में नहछू नामक संस्कार का भी विशेष उल्लास के साथ चित्र खींचा है।

जनता के हृदय पर मानस ने इतना गहरा प्रभाव डाला है कि आज ॐ, ब्रह्म, शिव नारायण, राधा-कृष्ण आदि नामों की अपेक्षा राम-नाम का ही व्यापक प्रचार-प्रसार है। बहुत जगह तो लोग अभिवादन के अवसर पर भी 'जय रामजी की' या 'जय सीताराम' ही कहा करते हैं। अधिक क्या कहा जाय, तुलसी के आराध्य राम जनमानस के इतने समीप

---

१ मा० १.१९३
२ वहीं
३ मा० १.१९७.२–१.१९८.१ (पू०)
४ मा० १.२०३.३
५ मा० १.२०४.३
६ मा० १.३१४—१.३२६
७ मा० १.३२७.१-१०
८ मा० २.१७०.१–५
९ मा० २.१७०.६–२ १७१.१
१० मृग नयनि बिधु बदनी रचेउ मनि मंजु मंगलहार सो।
उर धरहुँ जुबती जन बिलोकि तिलोक सोभा सार सो।।
—पार्वती-मंगल, अन्तिम पद, पं० १ २

आ चुके हैं कि शव-संस्कार के लिए शव को ले जाते हुए भी लोग "राम नाम सत्य है" का उद्घोष किया करते हैं और संस्कार-काल में 'मानस' के दशरथ-मरण प्रकरण का ढोल-मजीरे के साथ सस्वर पाठ किया करते हैं। हाँ, उक्त उद्घोष एवं सस्वर पाठ प्रायः वयोवृद्ध व्यक्ति के निधन पर ही किये जाते हैं। पुनः मृतक-संस्कार के समय में संस्कार-स्थान को लिप-पोत कर पहले पाँच बार राम-नाम लिखा जाता है और तब उसपर चिता बनाई जाती है। अंत्येष्टि-संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात भी उस स्थान को स्वच्छ करके वहाँ पुनः पाँच बार राम-नाम लिखा जाता है। इस प्रकार हिन्दू-जीवन के आदि से अंत तक राम का नाम अवलम्बन बना रहता है। राम-नाम की इस महिमा का प्रचार तो बाल्मीकि से लेकर तुलसी तक सभी करते रहे परन्तु यदि सच पूछा जाय तो हिन्दू-हृदय एवं हिन्दू-संस्कारों में राम-नाम को इस प्रकार सन्निविष्ट करने वाले भक्त कवियों में यदि किसी को सर्वाधिक श्रेय प्राप्त है तो वह महामान्य महात्मा महाकवि गोस्वामी तुलसीदास को। वस्तुतः तुलसी ने भारतीय हिन्दू का समग्र जीवन राममय बना दिया है।

(अ) लोकोत्सव व्रत एवं पूजा पाठ पर—

प्रत्येक राष्ट्र के मनुष्य वर्ष के कई दिन कोई-न-कोई उत्सव अवश्य मानते हैं। भारत-वर्ष एक विभिन्न धर्मों की समवेत संस्कृति का देश है। अतः इसके उत्सव, व्रत एवं पूजा-पाठ भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। जैसे हिन्दुओं के रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, दुर्गापूजा आदि तथा मुसलमानों के ईद, ईसाइयों के ईसामसीह का जन्मदिवस इत्यादि। यद्यपि ये उत्सव भिन्न भिन्न जातियों के हैं तथापि भिन्न-भिन्न पड़ोसी जाति के लोग भी उससे प्रभा-वित होते हैं और थोड़ा बहुत भाग भी लेते हैं। यों तो हिन्दुओं के प्रधान पर्व रक्षाबंधन, दीपावली या लक्ष्मीपूजा, वसन्तोत्सव का सरस्वती पूजा आदि भी हैं, परन्तु जो सम्मान श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, रामनवमी एवं विजयादशमी को प्राप्त है वह अन्य लोकोत्सवों को नहीं इन तीनों में से अन्तिम दो तो भगवान् राम के चरित्र से संबंधित हैं और पहला भी विष्णु के अवतार, अतएव श्रीराम से अभिन्न, कृष्ण का जन्मोत्सव है। इस प्रकार हिन्दू जनता की दृष्टि में इन तीनों का समान महत्व है और इसलिए ये बहुत धूम-धाम से मनाये जाते हैं। इनमें न केवल हिन्दू-जनता वरन् अन्य लोग भी काफी अनुराग से भाग लेते हैं। कहने की आव-श्यकता नहीं है कि इन उत्सवों पर तुलसी के मानस का प्रभाव विशेष है। ज्यों-ज्यों 'मानस' व्यापक होता गया त्यों-त्यों इन उत्सवों की व्यापकता भी बढ़ती गयी। रामचन्द्र का जन्म दिवस चैत्रशुक्लनवमी एवं उनके प्रवर्षण से लंका के लिए प्रस्थान से संबंधित आश्विन शुक्ल विजयादशमी, प्रायः समग्र उत्तर भारत में बड़े समारोह के साथ मनायी जाती है। विजया-दशमी के आस-पास रामलीला भी होती है जिसमें रावण, कुम्भकरण, मेघनाद आदि के पुतले राम द्वारा निहत दिखाकर जलाये जाते हैं। यह रामलीला भारत में कब से प्रचलित हुई है और इसमें कब-कब क्या-क्या परिवर्तन हुए इस संबंध में इतिहास मौन है। किन्तु अनुमान ऐसा है कि तुलसी के "रामचरितमानस" की रचना के पश्चात् ही उनके अद्भुत काव्य के दृश्यत्व से मुग्ध होकर किसी भक्त ने इन लीलाओं का आयोजन किया होगा। आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में "पौराणिक प्रवाह के अनुसार वाराणसी के दो विभाग हैं—केदार खंड और काशी खण्ड। दक्षिणी का नाम केदार खण्ड

और उत्तरी का काशीखण्ड है । केदार खण्ड की रामलीला के प्रवर्तक स्वयम् तुलसीदास कहे जाते हैं और काशीखण्ड की रामलीला के प्रवर्तक मेघा भगत । भगत जी उनके मित्र थे और वाराणसी के कमच्छा स्थान में रहा करते थे जनश्रुति है कि भगत जी पहले वाल्मीकीय रामायण के अनुसार लीला कराते थे । तुलसीदास के अनुरोध पर मानसानुसारी लीला प्रचारित की ।''[1] ''मानस की रामलीला की जो पद्धति सुप्रचलित है, उसमें मानस का पाठ पहले होता है और पाठानुसारेण लीला एवम् संवाद तदनंतर ।''[1] 'रामचरितमानस'' के आधार पर इस प्रकार की रामलीला प्रायः प्रतिवर्ष हिन्दी-भाषी ग्राम-नगर में की जाती है और सीता-स्वयंवर, परशुराम-लक्ष्मण-संवाद, राम-वन-गमन, भरत-मिलाप, सीताहरण, लंकादहन तथा रामराज्याभिषेक आदि इसके प्रमुख अंशों को देख-सुनकर असंख्य स्त्री-पुरुष आह्लादित एवं पुलकित होते हैं । लीला के अन्त में रामायण की आरती होती है जिसे सभी दर्शक भी लेते हैं । अयोध्या, काशी एवं मिथिला रामलीला के प्रधान केन्द्र हैं । काशी के निकटस्थ रामनगर में जो रामलीला होती है, वह तो विश्वविख्यात ही है ।[2]

इसी प्रकार व्रतों में रामजन्मोत्सव एवं कृष्णजन्माष्टमी सर्वाधिक पुण्यप्रदा मानी जाती हैं । राम की आराधना एवं साधना में जब से लोक-रुचि हुई तब से इन उत्सवों की महिमा में अप्रत्याशित ढंग से वृद्धि हुई है और इससे हिन्दू व्रतों और उपवासों की पवित्रता एवं उत्तमता सिद्ध होती है ।

मानस के प्रणयन के पूर्व लोग अन्य ग्रन्थों के आधार पर पूजा-पाठ एवं यज्ञ कराया करते थे, लेकिन जब से इसकी रचना हुई तब से पूजा-पाठ एवं यज्ञ के लिये भी ''रामचरितमानस'' ही आधार ग्रन्थ बन गया । अब तो चैत्रशुक्ल के नवरात्रों में ही नहीं बल्कि आश्विन शुक्ल के नवरात्रों में भी यत्र-तत्र ''रामचरितमानस'' का विधिवत नवाग्रह पारायण किया जाता है । अनिष्ट ग्रहों की शान्ति एवं राष्ट्रीय संकटों को दूर करने के लिये भी मानस-पाठ, मानस-महायज्ञ इत्यादि किये जाने लगे हैं । इस तरह लोकोत्सव, व्रत एवं पूजा-पाठ पर भी ''मानस'' की भक्ति का विशेष प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है ।

(झ) मानव-मनोविनोदों पर—

मानव-हृदय में जिस प्रकार आत्म-भरण-पोषण की प्रबल कामना रहती है उसी प्रकार जीवन के अवकाश क्षणों में मनोविनोदों की वासना भी । बिना मनोविनोदों के वे ही जीवित रह सकते हैं जो या तो सर्वथा जड़ हैं या पूर्ण विरक्त एवं ज्ञानी । सामान्य मानव अपने जीवन में विविधता चाहता है । इसीलिए संगीत, साहित्य एवं नृत्य आदि भिन्न-भिन्न प्रकार की मनोविनोद सम्बन्धी कलाओं का आविष्कार होता गया है । भर्तृहरि ने तो

---

१ रामचरितमानस, काशिराज संस्करण, आत्मनिवेदन, पृ० १७-१८

२ राम स्वयंवर, पृ० ६६६, पं० २-६—

''राम नगर गंगा तट माहीं । निवसत गौतम भूप तहाँहीं ।
....
....
कतहुँ न भरत खंड महँ ऐसी । करहिं रामलीला नृप जैसी ।''

मानव-जीवन के लिए इन कलाओं की नितान्त आवश्यकता घोषित की है।[1] साहित्य तो भक्ति का आगार है ही और वह किस प्रकार "मानस" से प्रभावित है यह हम पहले ही निवेदन कर चुके हैं। यहाँ यह विचारणीय प्रश्न है कि संगीत, नृत्य, नाट्य, चलचित्र एवं आकाशवाणी आदि पर "मानस" का किस प्रकार प्रभाव पड़ा है और किस प्रकार प्रच्छन्न एवं अज्ञात रूप से ही उनमें भक्ति ओत-प्रोत हो रही है।

संगीत दो प्रकार के होते हैं—शास्त्रीय एवं लौकिक। संगीतशास्त्र एक गहन और श्रमसाध्य कला का विषय है। असंख्य नर नारियों का समुदाय इससे अपना जीविकोपार्जन करता है। इस संगीत के साथ भक्ति का भी बहुत कुछ नैसर्गिक साहचर्य है। तुलसी ने रामचरित सम्बन्धी बहुत से गीतात्मक पद्यों की रचना की है जो विनयपत्रिका, गीतावली आदि में उपलब्ध होते हैं। "रामचरितमानस" एक महाकाव्य एवं पाठ्य ग्रन्थ होने के कारण तुलसी के गीतात्मक काव्यों के समान शास्त्रीय संगीतज्ञों के बीच तो अधिक प्रचार नहीं पा सका, किन्तु मानस की भक्ति-भावना लेकर तुलसी ने जो अन्य काव्य लिखे हैं या जो स्वयं शास्त्रीय संगीतज्ञों ने भी लिखा है, उनका उनके बीच में पर्याप्त प्रचार है। यों मानस की चौपाइयाँ, दोहे एवं छन्द भी उनके बीच प्रशंसित हैं और वे बड़ी तल्लीनता के साथ उन्हें गाते हैं। कोई भी कीर्तन-मण्डली "मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी।।[2] को गाये बिना अपना कार्य प्रारम्भ ही नहीं करती। इससे स्पष्ट है कि शास्त्रीय संगीतज्ञों के मध्य भी मांगलिक अनुष्ठान के लिये तुलसी के मानस की पंक्तियाँ एक परमावश्यक उपकरण बन गयी हैं। जो संगीत शास्त्रीय नहीं, लौकिक है उनमें मानस-गान की कई प्रणालियाँ हैं। "मानस" गान की ये प्रणालियाँ भारतीय ग्राम्य-जीवन को सरस एवं आल्हादपूर्ण बनाये रहती हैं। देहातों में बिरहा-गायक लोग प्रायः समग्र मानस को बिरहा का रूप दे देते हैं और प्रेम-विह्वल कंठ से रामभक्ति की प्रेरणा प्रदान करते हुये उसका गायन करते हैं। ग्रामों के अतिरिक्त नगरों में भी मानस-गान की प्रायः धूम रहती है जिससे वहाँ के मठ-मन्दिर गुंजायमान रहते हैं।

मानव-जीवन में नृत्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। बड़े लोग प्रायः यज्ञोपवीत, विवाह आदि अवसरों पर किसी न किसी प्रकार के नृत्य का प्रबन्ध अवश्य करते हैं। ये नृत्य दो प्रकार के होते हैं। कुछ में तो नृत्य कला में प्रशिक्षित वैश्याएँ नृत्य करती हैं और कुछ में कुछ पुरुष मण्डली बाँध कर तरह-तरह के रूप बनाकर नृत्य, गीत एवं नाट्य का कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त वे कभी-कभी हास-परिहास की भी योजना करते हैं और लोग उन्हें भाँड़ कहते हैं। विविध प्रकार के गीत गाती हुई वैश्याएँ अपने भक्त श्रोताओं को संतुष्ट करने के लिए कलात्मक प्रदर्शन करती हुई "मानस" की भक्ति भावपूर्ण पंक्तियाँ गाया करती हैं। इसी प्रकार भाँड़ लोग भी कभी-कभी मानस के आधार पर राम वन-गमन, सीता-हरण, भरत-

---

१ साहित्य-संगीत-कला-विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छ-विषाण-हीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।
—भर्तृहरि, नीतिशतक, श्लो० १२

२ मा० १.११२.४

मिलाप आदि ऐसे-ऐसे दृश्यों का अभिनय करते हैं जिनमें संगीत, नृत्य एवं नाट्य की योजना रहती है।

नाट्य में रामलीला की चर्चा तो की ही जा चुकी है। राम के जीवन को लेकर संस्कृत में अनेक नाटक लिखे गये हैं और हिन्दी में उनके अनुवाद भी हुए हैं। साथ ही हिन्दी में कुछ मौलिक नाटक भी इस सम्बन्ध में लिखे गये हैं जो "मानस" से बहुत अंश में प्रभावित हैं। ऐसे नाटकों में महाराज विश्वनाथ सिंह कृत "आनंद" रघुनन्दन" पं० राधेश्याम कथा-वाचक कृत "सीता-बनवास" और श्रवण-वध, ठाकुर बसुनायक सिंह लिखित "लक्ष्मण परसुराम" और "अंगद पैज", पं० रामगोपाल पाँडेय "शारद" रचित "बजरंगबली या अंजनी-कुमार", श्री वामनाचार्य्य गिरि विरचित "वारिदनाद वध", लाला भगवानदास जैन अग्रवाल लिखित "धनुष यज्ञ मंजरी" आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। समय-समय पर ये नाटक हिन्दी-रंगमंच पर भी खेले जाते हैं।

चलचित्रों में भी लोकमानस को आकृष्ट करने के लिए अवसर-अवसर पर "रामचरितमानस" से सम्बन्धित चित्र प्रदर्शित किये जाते हैं। जैसे—सम्पूर्ण रामायण, रामलीला, भरत-मिलाप, पवनपुत्र हनुमान, गोस्वामी तुलसीदास इत्यादि।

आकाशवाणी से तो रामचरितमानस का अटूट सम्बन्ध है। तुलसी जयन्ती एवं राम-नवमी के दिन भारत के प्रायः प्रत्येक हिन्दी-भाषी प्रान्तों के रेडियो स्टेशन से तुलसी के जीवन एवं साहित्य सम्बन्धी महान साहित्यिकों एवं महापुरुषों के प्रवचन होते हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर तुलसी के सम्बन्ध में महान साहित्यिकों के विचार-विमर्श भी हुआ करते हैं। साथ ही यदा-कदा "भजनामृत" के कार्यक्रमों में "रामचरितमानस" की भक्ति-पूर्ण चौपाइयाँ स्त्रियों या पुरुषों द्वारा श्रुति मधुर ध्वनि में गाकर प्रसारित की जाती हैं। चैत्र शुक्ल रामनवमी के दिन तो विशेष रूप में "मानस" के रामजन्म प्रकरण से सम्बन्धित चौपाइयों, दोहे एवं छन्द प्रसारित किये जाते हैं और "मानस" के आधार पर राम के जीवन की चर्चाएँ की जाती हैं। इस प्रकार मानव-मनोविनोद एवं "रामचरितमानस" का पारस्परिक सम्बन्ध अनेक क्षेत्रों में विद्यमान है।

(ञ) तीर्थों एवं देव-मन्दिरों पर—

गोस्वामी तुलसीदासजी ने तीर्थों का विशेषतः राम से सम्बन्धित तीर्थों, जैसे—अयोध्या,[१] काशी,[२] प्रयाग,[३] चित्रकूट[४] एवं रामेश्वर[५] आदि का बड़े जोरदार एवं प्रभावशाली शब्दों में माहात्म्य-वर्णन किया है। इनके प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी।[६] वस्तुतः तुलसी की रचनाओं के कारण ही आज भी भारतीय लोक-जीवन का इन पुण्यभूमियों के प्रति

---

१ मा० ६.१२०.९, ७.४.२-७, ७.२९.८ (पू०)
२ मा० ४. सो० १, विनयपत्रिका—२२
३ मा० २.१०५.२—२.१०६.१, ६.१२०.८
४ मा० २,१३२.६--२.२३३.४, विनयपत्रिका २३, २४
५ मा० ६.३.१-२
६ मा० २.१२९.५

प्रगाढ़ आकर्षण है। उन्हें पढ़कर एवं सुनकर रामभक्त उन तीर्थों में जाकर अपने जीवन को सफल एवं कृतार्थ करता है।

भगवान के वन-गमन प्रसंग में एक दोहा आया है कि—

"जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनन्दु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ॥"[1]

इस प्रसंग को पढ़कर भक्तों के हृदय में अत्यन्त खेद होता है कि काश! यदि हम भी त्रेता में हुये होते तो भगवान् का दर्शन कर संसार-सागर से पार ही जाते। तुलसी ऐसे भक्तों की ग्लानि एवं क्षोभ को दूर करते हुये स्पष्ट शब्दों में आगे कहते हैं कि अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है क्योंकि—

"अजहुँ जासु उर सपनेहुं काऊ। बसहुं लखनु सिय रामु बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुं मुनि कोई॥"[2]

ठीक इसी तरह यदि किसी भक्त की शारीरिक एवं आर्थिक अवस्था ठीक नहीं है, वह अंधा, पंगु, रोगग्रस्त तथा अकिंचन है और इस कारण रामतीर्थों का दर्शनाभिलाषी होता हुआ भी वहाँ जाने में अक्षम है तो उसकी इस मनोदशा का निरीक्षण कर उसका पश्चात्ताप मिटाते हुए तुलसी ने ऐसे-ऐसे उपाय बतलाये हैं, जिनसे घर बैठे-बैठे ही वह भली-भाँति राम-तीर्थों में पर्यटन कर सकता है।[3]

तुलसी के बाद भगवान् राम एवं हनुमान् के मन्दिरों का निर्माण बहुत जोरों से हुआ है। अयोध्या एवं काशी में "मानस-मन्दिर" के निर्माण, काशी के संकटमोचन की विशेष प्रसिद्धि तथा ऐसे अन्यान्य देव-मन्दिरों, आश्रमों एवं तीर्थ-स्थानों का निर्माण, "राम-चरितमानस" की भक्ति के प्रभाव के ही प्रतीक हैं।

निष्कर्ष—

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि हिन्दी-राम-भक्ति काव्य एवं भारतीय जीवन पर "मानस" की भक्ति का सक्रिय एवं सजीव प्रभाव पड़ा है। वस्तुतः किसी भी महती साहित्यिक कृति के शाश्वत महत्त्व एवं चिरन्तन स्थायित्व के मूल्यांकन का वास्तविक मानदण्ड भी यही है कि वह अपने परवर्ती काव्य एवं जीवन को कहाँ तक अनुप्राणित एवं प्रभावित करती है। तुलसी का मानस भारतीय जनजीवन की भावनाओं

---

१ मा० २.१२३

२ मा० २.१२४.१-२

३ (क) मा० १.३१—"रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेहबन सिय रघुबीर बिहारु॥"

(ख) गीतावली, बालकाण्ड, पद ६, पं० ११—१२
"भरत, राम, रिपुदवन, लषन के चरित सरित-अन्हवैया।
तुलसी तबके-से अजहुँ जानिबे रघुबर-नगर-बसैया॥"

(ग) दोहावली ६१—"जे जन रुखे विषय रस चिकने राम सनेहँ।
तुलसी ते प्रिय राम को कानन बसहिं कि गेहँ॥"

एवं आकांक्षाओं में आत्मसात् हो चुका है। इसने लोक-जीवन में दृष्टिकोण की ऐसी समता एवं एकात्मकता स्थापित की है, जिसके समक्ष समस्त वैभिन्य एवं विरोधाभास तिरोहित हो गए हैं। इसकी महत्ता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि भारत में हिन्दी का कोई भी ग्रन्थ इतनी संख्या में न तो प्रकाशित होता है और न तो बिकता ही है। कदाचित् ही कोई हिन्दू-परिवार ऐसा होगा जहाँ "मानस" की एक प्रति न हो। "मानस" भारत के प्रत्येक व्यक्ति के मानस में बसने वाली वस्तु है और इसके स्थान पर किसी अन्य ग्रन्थ को ला बैठाना सर्वथा असंभव है। सर्वप्रियता की दृष्टि से तो यह ग्रन्थ अपना सानी ही नहीं रखता। इसके सदुपदेश की उपादेयता युवा-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गृहस्थ संन्यासी, आसक्त-विरक्त सभी प्राणियों के लिए समान भाव से विद्यमान है। यथार्थतः तुलसी ने इसमें भारतीय संस्कृति के सभी अंगों को स्पर्श किया है और उसके वाङ्मय की समस्त सुन्दरतम उपलब्धियों एवं बौद्धिक प्रक्रियाओं को सम्पुटित कर दिया हैं। वे सब हमारे संस्कार एवं कल्पना में उतर गये हैं। यही कारण है कि इसका सदुपदेश किसी एक काल, एक जाति, एक सम्प्रदाय तथा एकमत विशेष के लिए नहीं है प्रत्युत सभी काल, सभी जाति, सभी सम्प्रदाय तथा सभी मत के मनुष्यों के लिए समान भाव से उपयोगी एवं लाभकारी हैं। आत्म-कल्याण के साधक इससे आत्मोन्नति के मार्ग में अग्रसर हो रहे हैं। धर्म के तत्त्व के जिज्ञासुओं को इसमें सनातन वैदिक धर्म का साक्षात्कार हो रहा है। समाज के कर्णधारों एवं व्यवस्थापकों को इसमें व्यष्टि एवं समष्टि सब की दृष्टि से अनुकरणीय आदर्श उपलब्ध हो रहे हैं। काव्य रसिकों को इसमें ब्रह्मानंद-सहोदर की प्राप्ति हो रही है। भग्न-हृदय जन-समाज को इससे ऐसा आत्म-बल मिल रहा है, जिससे वह लोक एवं परलोक दोनों को निष्कंटक एवं मंगलमय बनाने में समर्थ हो रहा है। इस तरह इसमें लोक के सभी वर्गों की आवश्यकता की पूर्ति एवं अभिरुचि की तृप्ति करने वाली सामग्री पर्याप्त परिमाण में विद्यमान है। वस्तुतः रामचरितमानस हिन्दू-जाति एवं हिन्दू-धर्म की रक्षा एवं अभिवृद्धि के लिए एक अभूतपूर्व अवदान है। इसके निर्माण में तुलसी का मूल उद्देश्य केवल यही है कि भारतीय जनता में स्वधर्म एवं संस्कृति की ज्योति जगमगाती रहे और वह पाखन्डों से दूर रहकर भक्ति के बल पर संसार में रहते हुए संसार-सागर से पार हो सके। महासमुद्र में आने-जाने वाले जहाजों के पथ-प्रदर्शन के निमित्त निर्मित विशाल दीप-स्तंभ की भांति तुलसी का "मानस" भी आज शिक्षित-अशिक्षित सभी तरह के लोगों के लिए महान् पथ-प्रदर्शक है।
